साधना का मार्ग

प्रथम अध्याय

विशुद्धि का मार्ग

1
चित्त-शुद्धि

1. मनुष्य की भ्रांति और दु:खों का कारण क्लेश होते हैं। इन क्लेशों से मुक्त होने के पाँच मार्ग हैं।

पहला मार्ग है, सम्यक्दृष्टि से वस्तुओं को देखते हुए, उनके कारणों और परिणामों को ठीक से पहचाना। सभी दु:खों का मूल कारण हृदय में स्थित क्लेश होते हैं। इसलिए यह ठीक से समझ लेना चाहिए कि यदि ये क्लश नष्ट हो जाएँ तो दु:खरहित अवस्था प्रकट होती।

मिथ्यादृष्टि के कारण आत्मदृष्टि तथा कार्य-कारण- संबंधी नियम की उपेक्षा करने का विचार उठता है, और मिथ्यादृष्टि के वश में होन के कारण क्लेश पैदा होकर भ्रांति और दु:ख भोगने पड़ते हैं।

दूसरा मार्ग है, वासनाओं पर विजय पाकर क्लेशों का शमन करना। मन: संयम के द्वारा नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा और चित्त इन षडिंन्द्रियों में पैदा होने वाली वासनाओं को संयत करके उनका शमन

करना, जिससे क्लेशों का मूलस्रोत ही कट जाए।

तीसरा मार्ग है, सभी वस्तुओं का उपयोग करते समय, ठीक विचार से उनका उपयोग करना। वस्त्र पहनते समय या अन्न ग्रहण करते समय केवल उपभोग का विचार न करें। वस्त्र तो गर्मी या सर्दी से बचने के लिए और लज्जा ढँकने के लिए होते हैं और अन्न धर्मसाधना का मूलसाधन जो शरीर है उसके पोषण के लिए है, ऐसा मानना चाहिए। ऐसा विवेक रखने से क्लेश पैदा होना असंभव हो जाता है।

चौथा मार्ग है, तितिक्षा, अर्थात् सब सहन करने की शक्ति। गर्मी हो या सर्दी, भूख हो या प्यास उसे सहन करना चाहिए। कोई गाली दे या निन्दा करे तो भी उसे सहन करने से, अपने शरीर को जलाकर भस्म कर देनेवाली क्लेशों की आग बुझ जाती है।

पाँचवाँ मार्ग है, सभी प्रकार के संकटों से यथासंभव दूर रहना। सयाने लोग जंगली घोड़ों या पागल कुत्तों से दूर रहते हैं, वैसे ही जहाँ नहीं जाना चाहिए ऐसे स्थानों से या जिनसे संबंध नहीं रखना चाहिए ऐसे बुरे मित्रों से दूर रहना। ऐसा करने से क्लेशों की आग का शमन हो जाता है।

2. संसार में पाँच प्रकार की वासनाएँ होती हैं।

आँखों द्वारा देखे जाने वाले आकारों के कारण, कानों द्वारा सुनी जानेवाली ध्वनियों के कारण, नाक द्वारा सूँघी जानेवाली सुगंधों के कारण जिह्वा को भानेवाले स्वादों के कारण तथा त्वचा को भानेवाले स्पर्शों के कारण तरह-तरह की वासनाएँ पैदा होती हैं। इन पाँच इन्द्रिय-द्वारों से शरीर की भोग-लालसा पैदा होती है।

अधिकतर लोग शरीर की भोग-लालसा के वश होकर, भोग के बाद पैदा होनेवाले बुरे परिणामों को नहीं देखते, और जैसे वन में बहेलिये के जाल में हिरन फँस जाता है, वैसे ही मार के फैलाए हुए जाल में फँस जाते हैं। सचमुच इन्द्रिय-रूपी वासनाओं के ये पाँच द्वार बहुत ही खतरनाक जाल हैं। उनमें फँस जाने पर मनुष्य में क्लेशों का उद्‌भव होता है और उसे दुःख भोगना पड़ता है। इसलिए उसे इन जालों से बचने का उपाय जान लेना चाहिए।

3. यह उपाय केवल एक ही नहीं हो सकता। मान लीजिए कि हम साँप, मगरमच्छ, चिड़िया, कुत्ता, लोमड़ी और बन्दर इस प्रकार छह बिलकुल भिन्न स्वभाववाले प्राणियों को पकड़कर उन्हें किसी दृढ़ रज्जु से एक साथ बाँधकर रख दें तो ये छह प्रकार के प्राणी, अपने भिन्न स्वभावों के अनुसार अपने-अपने रहने के स्थान की ओर अपने-अपने ढंग से जाने की कोशिश करेंगे। साँप अपने बिल में, मगरमच्छ पानी में, चिड़िया आसमान में, कुत्ता गाँव में, लोमड़ी सूने मैदान में और बन्दर जंगल में जाना चाहेगा और इसलिए उनमें पारस्परिक संघर्ष होगा, और एक ही रज्जू से बँधे होने के कारण जिनकी शक्ति सब से अधिक होगी, वह दूसरों को अपने साथ

घसीट जाएगा।

ठीक इस दृष्टान्त के अनुसार मनुष्य नेत्र, श्रवण, नासिका, जिह्वा, त्वचा और चित्त इन षडिन्द्रियों की वासनाओं द्वारा विविध प्रकार से लुभाए जाते हैं और प्रबल वासना के अधीन हो जाते हैं।

यदि इन छह प्राणियों को एक खंभे से बाँध दिया जाए, तो वे तब तक छूटने की कोशिश करते रहेंगे, जब तक कि थककर चूर न हो जाएँ और फिर खंभे के पास चुपचाप पड़े रहेंगे। ठीक वैसे ही, यदि लोग अपने मन को अभ्यास के द्वारा संयत करें तो बाकी पाँच इन्द्रियाँ उन्हें और नहीं सताएँगी। यदि मन संयत हो तो लोगों को वर्तमान में और भविष्य में सुख का लाभ होगा।

4. लोग अपने अहंकार की तृप्ति के लिए यश-कीर्ति की कामना करते हैं। किन्तु यश-कीर्ति तो उस अगरु के समान है, जो कुछ देर जलकर बुझ जाता है। लोग अगर सम्मान और लोकेषणा के पीछे पड़ जाएँ और सत्यपथ से विचलित हो जाएँ, तो वे बड़े संकट में हैं और उन्हें शीघ्र ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

जो मनुष्य कीर्ति, संपत्ति और विषयवासना के चक्कर में पड़ जाता है, वह छुरी की धार पर लगे हुए शहद को चाटनेवाले बच्चे के समान है। शहर के माधुर्य का स्वाद लेते समय वह अपनी जिह्वा को घायल कर लेता है। वह उस आदमी के समान है जो तेज हवा के विरुद्ध मशाल को लेकर चलने की कोशिश कर रहा है; मशाल निश्चित ही उसके हाथों और चेहरे को जला देगी।

लोभ, क्रोध और मूढ़ता से भरे मन पर भरोसा नहीं करना चाहिए। मन को स्वतंत्र, निर्बाध दौड़ने नहीं देना चाहिए, उस पर कड़ा नियंत्रण रखना चाहिए।

5. संपूर्ण मन:संयम अत्यंत कठिन है। निर्वाण प्राप्ति की कामना करने वालों को पहले अपनी सब वासनाओं की ज्वालाओं को बुझा देना होगा। वासना एक जलती आग है, निर्वाण-प्राप्ति की कामना रखनेवालों को वासना की आग से बचे रहना चाहिए, जैसे घास के बोझ को उठाकर ले जानेवाला आदमी आग की चिनगारियों से बचकर रहता है।

किन्तु यह भी बड़ी मूर्खता होगी कि मनुष्य सुन्दर आकृतियों से मोहित होने के डर से अपनी आँखें ही निकाल बैठे। मन ही सब इन्द्रियों का स्वामी है, अगर मन पूरा नियंत्रित हो तो दूसरी दुर्बल वासनाएँ अपने-आप नष्ट हो जाएँगी।

निर्वाण के पथ का अनुसरण करना कठिन है, किन्तु उस पथ पर चलने का मन ही न हो तो वह और अधिक कठिन हो जाता है। बिना निर्वाण-प्राप्ति के जन्म-मृत्यु के इस संसार में दु:ख ही दु:ख भरा हुआ है।

निवार्ण के पथ का अनुसरण करना बैल के भारी बोझ पीठ पर लेकर कीचड़ से भरे खेल में होकर चलने के समान है। यदि बैल दूसरी बातों की ओर ध्यान दिए बिना अपनी सारी शक्ति लगाकर चलता रहे तो कीचड़ पार कर सकेगा और विश्राम ले सकेगा। ठीक वैसे ही यदि चित्त नियोंत्रत हो और उसे सत्थ-पथ से विचलित न होने दिया जाए, तो लोभ का कीचड़ बाधक नहीं होगा और चित्त के सभी दु:ख नष्ट हो जाएँगे।

6. निर्वाण के पथ का अनुसरण करनेवालों को सर्वप्रथम अहंकार का त्याग करना चाहिए और विनम्र भाव से बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

अच्छे स्वास्थ्य का आनंद लेने के लिए, अपने परिवार को सच्चा सुख देने के लिए, सब लोगों को शांति प्रदान करने के लिए हमें सबसे पहले अपने मन को वश में करना चाहिए। यदि मनुष्य अपने मन को नियंत्रित कर सके तो उसे निर्वाण का मार्ग मिल जाएगा और सभी ज्ञान और पुण्य उसे अपने-आप प्राप्त हो जाएँगे।

जैसे पृथ्वी में से रत्न निकलते हैं वैसे ही पुण्य सत्कर्मों से प्रकट होते हैं और ज्ञान पवित्र और शांत हृदय में पैदा होता है। मनुष्य-जीवन की भुलभुलैया में से सुरक्षित आगे बढ़ना हो, तो हमें ज्ञान के प्रकाश तथा सद्‌गुणों के मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

लोभ, क्रोध और मूढ़ता इन तीन विषों का त्याग करना चाहिए, इस आशय का बुद्ध का उपदेश अच्छा उपदेश है और जो उसका पालन करते हैं उन्हें सुखमय जीवन का आनन्द और शान्ति प्राप्त होती है।

7. सभी मनुष्य अपने विचारों के अनुसार आचरण करते हैं। यदि उनके मन में लोभ के विचार उठें तो वे लोभी हो जाते हैं; क्रोध के विचार उठें तो वे अधिक क्रोधी हो जाते हैं; यदि उनमें प्रतिहिंसा के विचार पैदा हो जाएँ तो वे उसी ओर कदम बढ़ाते हैं।

फसल के समय किसान अपने ढोरों को बाँधकर रखते हैं कि कहीं वे बाड़ तोड़कर दूसरों के खेतों में घुस न जाएँ और इस तरह पीटे या मार न डाले जाएँ। ठीक उसी प्रकार मनुष्यों को बेईमानी और बुरी बातों से अपने मन को अच्छी तरह बचाना चाहिए। उन्हें लोभ, क्रोध और मूढता को उत्तेजित करनेवाले विचारों को अपने मन से हटा देना चाहिए, किन्तु परोपकार और दयालुता को उत्तेजन देनेवाले विचारों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

जब वसन्त का आगमन होता है और चरागाह हरी घास से लहलहाने लगते हैं, तो किसान अपने मवेशियों को खुला छोड़ देते हैं, किन्तु उस समय भी उनकी उन पर कड़ी नजर रहती है। मनुष्यों के मन के साथ भी ऐसा ही होना चाहिए; उत्तम अनुकूल परिस्थिति में भी मन पर से नजर हटाई नहीं जानी चाहिए।

8. एक बार शाक्यमुनि बुद्ध कौशाम्बी नगर में विहार कर रहे थे। उस नगर में उनका द्वष करनेवाला एक मनुष्य था जिसने दो दुष्टों को घूस देकर नगर में बुद्ध के संबंध में गलत अफवाहें फैलाईं। ऐसी स्थिति में उनके शिषयों को भिक्षा में पर्याप्त अन्न मिलना कठिन हो गया और नगर में उनकी बहुत निन्दा होने लगी।

आनन्द ने शाक्यमुनि से कहा, ''भगवान, हमें ऐसे नगर में विहार नहीं करना चाहिए। विहार के लिए और दूसरे अच्छे नगर हैं। हमें यह नगर छोड़कर चला जाना चाहिए।''

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया: ''मान लो कि अगला नगर भी ऐसा ही हो, तो हम क्या करेंगे?''

''तो हम दूसरे नगर में चले जाएँगे।''

भगवान ने कहा: ''नहीं आनन्द, इसका कोई अन्त नहीं होगा। हमें यहीं रहना चाहिए और धैर्य से निन्दा को सहन करना चाहिए, जब तक कि उसका अन्त न हो जाए। और तब हमें दूसरे स्थान में जाना चाहिए।

''इस संसार में लाभ-हानि, मानापमान, निन्दा-स्तुति, सुख-दु:ख होते ही हैं। बुद्ध इन बाह्य उपाधियों से विचलित नहीं होते। जैसे वे उत्पन्न होती हैं, वैसे ही उनका अन्त भी हो जाता है।''

2
सदाचार का मार्ग

1. निर्वाणपथ पर चलनेवाले को काया, वाचा और मन की पवित्रता का सतत ध्यान रखना चाहिए। काया को पवित्र रखने के लिए किसी भी जीव की हत्या नहीं करनी चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए और व्यभिचार से बचना चाहिए। वाणी की शुद्धता के लिए झूठ नहीं बोलना चाहिए, निन्दा नहीं करनी चाहिए, किसी को ठगना नहीं चाहिए, और व्यर्थ बकवास नहीं करनी चाहिए। मन की शुद्धि के लिए लोभ, क्रोध और स्वार्थपरक दृष्टि का त्याग करना चाहिए।

यदि मन अशुद्ध है तो निश्चित ही सारे आचरण अशुद्ध हा जाएँगे; यदि आचरण अशुद्ध हो, तो दु:ख ही पैदा होगा। इसलिए मन और शरीर को पवित्र रख्ना सबसे महत्त्वपूर्ण है।

2. पुराने समय में एक धनी विधवा थी, जो अपनी दयालुता विनय शीलता और शील के लिए प्रसिद्ध थी। उसके पास एक नौकरानी थी, जो बहुत सयानी और परिश्रमी थी।

एक दिन उस नौकरानी ने सोचा: ''मेरी मालकिन की ख्याति बहुत अच्छी है। भला व सचमुच स्वभाव से ही अच्छी है या परिस्थितियों ने उसे अच्छा बनाया है? मैं उसकी परीक्षा लूँगी।''

अगले दिन वह नौकरानी दोपहर तक अपनी मालकिन की सेवा मे नहीं गई। मालकिन बहुत नाराज़ हुई और उसने नौकरानी को बहुत डाँटा। नौकरानी ने कहा:

''अगर मैं एकाध दिन अलसा जाऊँ, तो आपको धीरज नहीं खोना चाहिए।'' यह सुनकर मालकिन को और गुस्सा आया।

दूसरे दिन नौकरानी फिर देर से उठी। इससे मालकिन बहुत गुस्सा हो गई और उसने नौकरानी को छड़ी से पीटा। यह बात सर्वत्र फैल गई और वह धनी विधवा बदनाम हो गई।

3. बहुत-से लोग इस विधवा के समान होते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में वे दयालु, विनयी और क्षमाशील होते हैं। किन्तु परिस्थितियाँ बदल जाने और प्रतिकूल हो जाने पर भी वे वैसा ही व्यवहार करेंगे, यह नहीं कहा जा सकता।

उस व्यक्ति को हम तभी भला कह सकते हैं जब वह कानों में अप्रिय शब्द पड़ने पर भी, दूसरों द्वारा दुर्व्यवहार किए जाने पर भी अथवा अन्न

वस्त्र और निवास की कमी होने पर भी मन को शुद्ध, शान्त और स्थिर रखे और भलाई का व्यवहार करता रहे।

इसलिए जो लोग तभी तक भला काम करें और मन को शांत रख सकें, जब तक कि परिस्थितियाँ संतोषजनक हों तो, वे वास्तव मे भले लोग नहीं होते। केवल उन्हीं लोगों को वास्तव में अच्छा विनयी और शांत कहा जा सकता है, जिन्होंने बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण किया है और जो उन उपदेशों के अनुसार अपने मन और शरीर को साध रहे हैं।

4. उचित शब्दों के प्रयोग के संबंध में सोचा जाए तो पाँच प्रकार के विपरीत अर्थबोधक शब्दों के जोड़े पाए जाते हैं प्रसंगानुकूल शब्द और प्रसंग के प्रतिकूल शब्द; तथ्यपूर्ण शब्द तथा तथ्यहीन शब्द; सुनने में प्रिय शब्द तथा अप्रिय कठोर शब्द: कल्याणकारी शब्द तथा हानिकारक शब्द: सहानुभूति-भरे शब्द तथा द्वेषपूर्ण शब्द।

हम जो भी शब्द मुँह से निकालें, उन्हें सावधानी से चुनना चाहिए, क्योंकि लोग उन्हें सुनेंगे और उनका उनपर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ेगा। यदि हमारा हृदय सहानुभूति और करुणा से भरा हो, तो जो भी बुरे शब्द हम सुनेंगे उनका वह प्रतिरोधक होगा। हमें उद्धत शब्दों को अपने मुँह से निकलने नहीं देना चाहिए कि कहीं वे क्रोध और द्वेष की भावनाएँ पैदा न करें। हम जो भी शब्द बोलते हैं वे सदा सहानुभूति और विचारपूर्ण होने चाहिए।

मान लीजिए कि कोई आदमी इस पृथ्वी पर से सारी मिट्टी को हटाना

चाहे और मिट्टी को खाद कर इधर-उधर फेंकता हुआ 'मिट्टी तू नष्ट हो जा' कहता रहे तो क्या कभी मिट्टी को हटा सकेगा? वैसे ही हम सभी शब्दों का कभी हटा नहीं सकते।

इसलिए अपने मन को अभ्यास से दृढ करना और अपने हृदय की सहानुभूतिपूर्ण रखना चाहिए जिससे दूसरों के द्वारा कहे गए वचनों में अविचलित रह सकें।

चित्रांकन के समस्त साधनों के रहते हुए भी आकाश में चित्र बनाना असंभव है। उसकी तरह घास को जलाकर उसके ताप से बड़ी नदी को सुखाना या अच्छी तरह कमाए हुए चमड़े के दो टुकड़ों को घिसकर उनसे चर्रमर्र की ध्वनि निकालना असंभव है। इन उदाहरणों की तरह लोगों को अपने मन को अभ्यास द्वारा इस तरह दृढ़ बना देना चाहिए कि केसे भी शब्द क्यों न सुनने पड़े हृदय कभी विचलित न हो।

उन्हें अपने मन को अभ्यास द्वारा दृढ़कर पृथ्वी के समान विशाल, आकाश के समान असीम, बड़ी नदी के समान गहरा आर अच्छी तरह कमाये हुए चमड़े मृदु रखना चाहिए।

यदि शत्रु आपको बन्दी बना ले और अत्याचार करें और आपमें प्रतिहिंसा और विरोध जागे, तो समझना चाहिए कि आप बुद्ध के उपदेश का अनुसरण नहीं कर रहे हैं। किसी भी परिस्थिति में आपको इस प्रकार सोचना-सीख लेना चाहिए : ''मेरा मन स्थिर है। द्वेष और क्रोध के शब्द मेरे होठों पर नहीं आएँगे मैं अपने शत्रु को भी सर्वव्यापिनी करुणा से परिपूर्ण अपने हृदय से नि:सृत सहानुभूति और दया के विचारों से परिवेरिष्टत कर लूँगा।''

5. एक लोककथा है। एक मनुष्य ने एक बाँबी देखी जो दिन में जलती और रात को धुआँ उगलती। उसने एक ज्ञानी पुरुष से उसके बारे में जानना चाहा। ज्ञानी पुरुष ने उसे तलवार से उस बाँबी को खोदने के लिए कहा। मनुष्य ने वैसा ही किया। उसको बाँबी मे से सबसे पहले छड़, फिर पानी में कुछ बुलबुले, एक जंलरा, एक बक्सा, एक कछुआ, कसाई की छुरी माँस का एक टुकड़ा और सब में अंत में एक नाग मिला। उस मनुष्य ने ज्ञानी पुरुष को बताया। तब ज्ञानी पुरुष ने उसे समझाया ''नाग के अतिरिक्त बाकी सब कुछ फैंक दो; नाग को वैसे ही रहने दो, उसे मत छेड़ना''

यह एक दृष्टान्त-कथा हैं। इसमें 'बाँबी' का अर्थ मनुष्य का शरीर हैं। 'दिन में जलने' का मतलब है लोग पिछली रात को सोची हुई बातों को दिन में कार्यान्वित करते हैं। 'रात को धुआँ उगलने' का मतलब है लोग दिन-भर किए हुए कर्मों के संबंध में रात को सोचकर आनन्द का या दु:ख का अनुभव करते हैं।

इस दुष्टान्त–कथा का 'एक मनुष्य' वह व्यक्ति है जो निर्वाण की कामना करता है। 'ज्ञानी मनुष्य' बुद्ध है। 'तलवार' का मतलब है शुद्ध ज्ञान। 'खोदने' का मतल है निर्वाण-प्राप्ति के लिए प्रयास करना।

आगे इस दृष्टान्त-कथा में 'छड़' अविद्या का प्रतीक है; 'बुलबुले' क्रोध और दुःख हैं; 'जंतरा' हिचकिचाहट और बेचैनी सूचित करता है; 'बक्सा' लोभ, क्रोध, आलस्य, चंचलता, पश्चात्ताप और भ्रांति का भण्डार सूचित करता है; 'कछुए' का अर्थ है शरीर और मन; 'कसाई की छुरी' का मतलब है पंचन्द्रियों की तृष्णाएँ; 'माँस के एक टुकड़े' का मतलब है उनमें से उत्पन्न वासना, जो मनुष्य में तृप्ति की लालसा पैदा करती है। ये सब बातें मनुष्य के लिए हानिकर हैं और इसलिए बुद्ध ने कहा, ''सब कुछ फेंक दो।''

और आगे, 'नाग' क्लेश-मुक्त चित्त सूचित करता है। यदि मनुष्य ज्ञान-खड्ग से अपने आसपास की वस्तुएँ खोदता जाए तो वह अन्त में इस नाग को देख पाता है। 'नाग को वैसे ही रहने दो, उसे मत छेड़ना,' का अर्थ है खोदते चलो और क्लेशों से विमुक्त चित्त को खोद निकालो।

6. बुद्ध का एक शिष्य पिंडोल भारद्वाज, निर्वाण-प्राप्ति के बाद, अपनी जन्मभूमि का ऋण चुकाने के लिए कौशाम्बी लौटा और वहाँ उसने प्रयत्नपूर्वक बुद्ध-बीज बोने के लिए क्षेत्र-भूमि तैयार करने का विचार किया।

कौशाम्बी के नगरोपान्त में गंगा नदी के किनारे एक छोटा-सा उद्यान है, जहाँ नारियल के पेड़ों की अन्तहीन पंक्तियाँ खड़ी हैं और जहाँ शीतल पवन सतत बहता रहता है।

गर्मी के एक दिन, जब पिंडोल एक वृक्ष की शीतल छाया में ध्यानस्थ बैठा था, राजा उदयन अपने रनिवास के साथ क्रीड़ा करने इस उद्यान में आया और संगीत व मौज-शौक के बाद, किसी दूसरे वृक्ष की छाया में सो गया।

राजा को सोया देखकर, उसने साथ की स्त्रियाँ उसे वही छोड़कर घूमने निकल पड़ी और अचानक उन्होंने ध्यान में बैठे हुए पिंडोल को देखा। वे पहचान गईं कि यह कोई पहुँचा हुआ पुरुष है और उन्होंने उससे उपदेश देने के लिए प्रार्थना की और वे उसके प्रवचन को सुनने लगीं।

जब राजा की नींद खुली, तब वह अपनी स्त्रियों की खोज में निकला और देखा कि वे तो एक परिव्राजक को घेरे बैठी हैं और उसका उपदेश सुन रही है। ईर्ष्यालु और लम्पट राजा के क्रोध का कोई ठिकाना न रहा। उसने गालियाँ देते हुए पिंडोल से कहा, "श्रमण होते हुए तुम स्त्रियों के बीच बैठो और उनसे स्वैर वार्तालात का आनन्द लेते रहो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता।" पिंडोल शांति से आँखें मूँदकर बैठा रहा और उसने एक शब्द भी नहीं कहा।

गुस्से से भरकर राजा ने तलवार निकाली और पिंडोल को धमकाया, किन्तु वह मौन और शिला के समान अडिल रहा। इस पर राजा को और गुस्सा आ गया; उसने एक बाँबी तोड़कर लाल चींटियों से भरी धूल उसपर फेंकी, किन्तु तो भी पिंडोल शांति से अपमान और पीड़ा सहन करता हुआ ध्यान में बैठा रहा।

यह देखकर राजा को अपने क्रूर व्यवहार पर लज्जा आई और उसने पिंडोल से क्षमायाचना की। इस घटना के कारण बुद्ध के उपदेश को राजा के प्रासाद में प्रवेश मिला और वहाँ से वह सारे देश में फैल गया।

7. कुछ दिन बाद राजा उदयन वन में पिंडोल के निवास स्थान पर गया और उससे पूछा, ''पूज्य गुरुजी, बुद्ध क शिष्य तरुण होते हुए भी वासना के शिकार हुए बिना अपने शरीर और मन को पवित्र कैसे रख सकते हैं?''

पिंडोल ने उत्तर दिया : ''महाराज, भगवान बुद्ध ने हमें सभी स्त्रियाँ का सामन रूप से आदर करना सिखाया है। भगवान ने कहा है कि भिक्षुओ, जो स्त्रियाँ आपकी माँ की आयु की हों उन्हें आप माँ मानिए; जो बहन की उमर की हों उन्हें बहन समझिए ओर जो पुत्री की आयु की हों उन्हें पुत्री समझिए। इस उपदेश के कारण बुद्ध के शिष्य, तरुण होते हुए भी बिना वासना का शिकार हुए अपने शरीर और मन को पवित्र रख सकते हैं।''

''किन्तु गुरुजी, चित्त बड़ा ही चंचल है। माँ की आयु की, बहन की आयु की या पुत्री की आयु की स्त्रियों के संबंध में भी उसमें कामविकार पैदा होते हैं। बुद्ध के शिष्य अपनी वासनाओं का दमन कैसे करते है?''

''महाराज, भगवान ने हमें सिखाया है कि अपने शरीर को रक्त, पीप, स्वेद और लसिका जैसे अशुचि पदार्थो से भरा हुआ देखों इस प्रकार देखने से हम लोग, तरुण होते हुए भी, अपने मन को पवित्र रखकर ब्रह्मचर्य

का पालन कर सकते हैं।''

''पूज्य गुरुजी,'' राजा ने फिर प्रश्न किया, ''जिन भिक्षुओं ने अपने देह और मन को साधा हो, प्रज्ञा को परिष्कृत किया हो, उनके लिए यह कार्य सरल होगा, किन्तु जिनकी साधना अभी अपरिपक्व है, उनके लिए यह कठिन हागा। अशुचि दृष्टि से वे देह को देखने का प्रयास करें तो भी उन्हें वहाँ सौंदर्य दिखाई देगा। कुरूपता देखने का प्रयास करने पर भी सुन्दर आकृतियाँ उनका मन हर लेंगी। भगवान बुद्ध के तरुण शिष्य अपने आचरण को शुद्ध रख सकते हैं, इसका कोई और कारण होना चाहिए।

''महाराज,'' पिंडोल ने उत्तर दिया, ''भगवान ने कहा है कि 'भिक्षुओं, तुम लोग पंच इन्द्रियों के द्वारों की रखवाली करना।' जब हम अपनी आँखों से सुन्दर आकृतियाँ और रंग देखते हैं, जब हम अपने कानों से श्रवणमधुर ध्वनियाँ सुनते हैं, जब हम अपनी नाक से सुगंध सूँघते हैं अथवा जब अपनी जिह्वा से मिठाई का स्वाद लेते हैं या हाथों से मृदु वस्तुओं का स्पर्श करते हैं, तो इन आकर्षक वस्तुओं में आसक्त नहीं होते और न अनाकर्षक वस्तुओं से घृणा करते हैं। हमें इन पाँच इन्द्रियों के द्वारों की ठीक रखवाली करना सिखाया गया है। भगवान के इस उपदेश के कारण तरुण भिक्षु भी अपने मन और शरीर को पवित्र रखकर ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं।''

''बहुत अच्छा, बहुत अच्छा! भगवान बुद्ध का उपदेश सचमुच अद्‌भुत है। मैं अपने अनुभव से जानता हूँ कि जब मैं असंवृत इन्द्रियों से किसी सुन्दर या आह्लादक वस्तु का सामना करता हूँ, तो कामविकार मेरा

पूर्णरूप से पराभव करते हैं। पंचेन्द्रियों के द्वारों की रखवाली करना, अपने आचरण को शुद्ध रखने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।''

8. जब कोई व्यक्ति अपने मन के विचार को आचार में अभिव्यवत करता है तो सदा उसकी त्वरित प्रतिक्रिया भी होती है। यदि कोई आपको गाली देता है, तो तुरन्त उसका जवाब देने की या बदला लेने की इच्छा होती है। मनुष्य को इस स्वभाविक प्रतिक्रिया से सावधान रहना चाहिए। यह तो चाँद का थूकने जैसा है, जो स्वयं को ही हानि पहुँचाता है। अथवा हवा के विरुद्ध धूल झाड़ने जैसा है, धूल तो नष्ट नहीं होती, उल्टा हमारे शरीर को गंदा कर देती है। बदले की भावना के अधीन होने वाले का दुर्भाग्य हमेशा पीछा करता है।

9. लोभ को त्याग कर दानशील वृत्ति धारण करना बहुत अच्छा कार्य है। अपने मन को समादरपूर्वक आर्यमार्ग के सन्धान में एकाग्रता से लगा देना और भी अच्छा है।

मनुष्य को स्वार्थ का त्यागकर उसके बदले दूसरों की सहायता करने की तत्परता को अपनाना चाहिए। यदि हम किसी को सुखी करते हैं तो उससे उसे किसी और को सुखी करने की प्रेरणा मिलती है और इस प्रकार ऐसे कर्म से सुख पैदा होता है।

एक मशाल से हज़ारों मशालें जलाई जा सकती हैं और फिर भी वह मशाल तो जैसी की वैसी ही रहती है; वैसे ही सुख कितना भी बाँटो उसमें कोई कमी नहीं होती।

निर्वाण की साधना करनेवालों को हर एक डग सावधानी से उठाना चाहिए। हमारी आकांक्षा कितनी ही ऊँची क्यों न हो, एक-एक कदम बढाकर ही हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। हमें यह भी भूलना नहीं चाहिए कि निर्वाण का मार्ग तो हमारे दैनंदिन जीवन में ही है, हमारे प्रतिदिन के जीवन से पृथक नहीं।

10. इस संसार में निर्वाण के पथ पर चलते ही बीस बाधाएँ रास्ता रोकरकर खड़ी हो जाती हैं। वे हैं। (1) गरीब मनुष्य के लिए दानशील बनना कठिन हैं। (2) घमंड़ी मनुष्य के लिए निर्वाण के पथ को सीखना कठिन है। (3) आत्मबलिदान करके निर्वाण-प्राप्ति की खोज करना कठिन है। (4) बुद्ध जब इस संसार में अवतरित होते हैं उस समय जन्म लेना कठिन है। (5) बुद्ध के उपदेश का श्रवण करना कठिन है। (6) शारीरिक वासनाओं के होते हुए मन को शुद्ध रखना कठिन है। (7) सुन्दर ओर आकर्षक वस्तुओं की कामना न करना कठिन है। (8) बलवान मनुष्य के लिए अपनी इच्छा-पूर्ति के हेतु बल-प्रयोग न करना कठिन है। (9) अपमान होने पर भी क्रोध न करना कठिन है। (10) मन को लुभाने वाली परिस्थितियों में सहसा फँसकर निर्दोष रह पाना कठिन है। (11) व्यापक और गहन स्वाध्याय में अपने को लगाए रखना कठिन है। (12) नौसिखिये को तुच्छता से न देखना कठिन है। (13) घमंड़ को त्यागकर अपने को विनम्र रखना कठिन है। (14) अच्छे और हितैषी मित्र मिलना कठिन है। (15) निर्वाण की ओर ले चलने वाले आत्मनिग्रह को सहन करना कठिन है। (16) बाह्य अवस्थाओं और परिस्थितियों से विचलित न होना कठिन है। (17) सामने वाले की क्षमता के अनुसार उसे उपदेश देना कठिन है। (18) अपने चित्त को सदा शांत रखना कठिन है। (19) धर्माधर्म के संबंध में विवाद न करना

कठिन है। (20) अच्छी पद्धति को ढूँढ़ना और सीखना कठिन है।

11. धर्मात्मा ओर पापात्मा दोनों ही तरह के आदमियों का अपना-अपना स्वभाव होता है। पापात्मा पापकर्म को पाप नहीं समझते; यदि पाप की ओर ध्यान दिलाया जाए, तो भी उसे नहीं छोड़ते और न यही पसन्द करते हैं कि कोई उन्हें उनके पापकर्मों के बारे में बताए। धर्मात्मा धर्माधर्म के संबंध में बहुत सतर्क रहते हैं; जब भी वे देखते हैं कि उनका कोई कर्म अधार्मिक है, तो वे तुरन्त उनका त्याग करते हैं; वे ऐस किसी भी व्यक्ति के प्रति कृतज्ञ होते हैं, जो उनका ध्यान ऐसे पापकर्म की ओर दिलाए।

इस प्रकार धर्मात्मा और पापात्मा मनुष्यों में मूलभूत अन्तर होता है। पापी मनुष्य अपने प्रति दर्शाए गए सौजन्य की कभी कदर नहीं करते, किन्तु सत्पुरुष उसकी कदर करते हैं और कृतज्ञ होते हैं। वे न केवल अपने उपकारकर्त्ता के प्रति, अपितु सभी मनुष्यों के प्रति सौजन्य दिखाकर आदर और कृतज्ञता को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं।

3
भगवान बुद्ध के दृष्टान्त

1. पुराने जमाने में किसी देश में एक विचित्र प्रथा थी, जिसके अनुसार बूढ़े लोगों को सुदूर ओर दुर्गम पहाड़ों पर ले जाकर छोड़ दिया जाता था।

उस देश के राजा के मंत्री के लिए अपने बूढ़े पिता के संबंध में इस

प्रथा का पालन करना कठिन हो गया। इसलिए उसने जमीन में एक गहरा गड्ढा खोदकर एक घर बनाया और उसमें पिताजी को छिपाकर उनकी सेवा करने लगा।

एक दिन उस देश के राजा के सामने एक देवता प्रकट हुए और राजा के सामने एक कठिन पहेली पेशकर कहा कि यदि वह उसे संतोषपूर्वक सुलझा न सका तो देश का नाश हो जाएगा। पहेली यह थी: ''यहाँ दो साँप हैं; उनमें से कौन नर है और कौन मादा–मुझे बताना।''

न राजा, न राजभवन का कोई निवासी इस पहेली को सुलझा सका; इसलिए राजा ने घोषणा की कि उसके राज में जो कोई भी इस पहेली को सुलझा सके, उसे महान पुरस्कार दिया जाएगा।

वह मंत्री घर लौटा ओर चुपके–से पिताजी के पास जाकर उसने उनसे इस पहेली का उत्तर पूछा। वृद्ध पिता ने कहा, ''इसमें क्या बड़ी बात है! दोनों साँपों को एक मुलायम गलीचे पर रख दो। जो इधर–उधर हलचल करने लगेगा वह नर है, और जो चुपचाप पड़ा रहेगा वह मादा है।'' मंत्री उस उत्तर को लेकर राजा के पास चला गया और पहेली सफलतापूर्वक सुलझ गई।

फिर देवता ने और कठिन प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर राजा और उसके अनुचर नहीं दे पाए: किन्तु मंत्री, अपने वृद्ध पिता से पूछकर, उन्हें सुलझा सका।

उसमें से कुछ प्रश्न और उनके उत्तर इस प्रकार हैं। ''ऐसा कौन है, जो सोता हुआ भी जाग्रत कहलाता है और जागता हुआ भी सोता हुआ कहलाता है?'' उत्तर है: ''वह जो निर्वाण की साधना में लगा हुआ है। जो लोग निर्वाण में रुचि नहीं रखते उनकी तुलना में वह जाग्रत है; जो पहले ही निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं उनकी तुलना में वह सोया हुआ है।''

''हाथी को केसे तौला जा सकता है?'' ''उसे एक नाव पर रखिए और नाव पानी में जहाँ तक गहरी डूबती है वहाँ निशान के लिए एक रेखा अंकित कीजिए। उसके बाद हाथी को नाव से बाहर निकालिए और उसे पत्थरों से भर दीजिए, जब तक कि वह उतनी ही गहराई तक न डूब जाए, और फिर उन पत्थरों को तौलिए।''

इस कहावत का क्या मतलब है कि ''एक प्याला पानी महासागर के पानी से भी अधिक है?'' उत्तर है: ''विशुद्ध और प्यार-भरे हृदय से एक प्याला भरकर पानी अपने मात-पिता को या बीमार आदमी को दिया जाए तो उसका पुण्य अनन्तकाल तक नष्ट नहीं होता। महासागर का पानी कितना ही अधिक क्यों न हो, किसी न किसी दिन वह नष्ट हो जाएगा।''

फिर देवता ने एक ऐसे बुभुक्षित का निर्माण किया, जिसकी केवल हड्डियाँ और चमड़ी ही शेष रह गई थीं और उससे शिकायत करवाई,

''इस संसार में मुझसे अधिक भूखा कोई है?''

''है। जो मनुष्य इतना स्वार्थी और लोभी है कि वह बुद्ध, धर्म और संघ के त्रिरत्न में विश्वास नहीं करता और जो अपने माता-पिता और गुरुजनों का ऋणमोचन नहीं करता, वह न केवल अधिक भूखा है अपितु वह भूखे प्रेतों के नरक में गिरेगा और वहाँ दीर्घकाल तक भूख से कष्ट भोगेगा।''

''यह चन्दन का तख्ता है; इसका कौन-सा सिरा जड़ की तरफ वाला है?'' तख्ते को पानी में रखिए: उसका जो सिरा पानी में अधिक डूबेगा वही जड़ की ओर का होगा।''

''एक ही रूप और आकार के दो घोड़े हैं; इनमें माँ कौन-सी है और बेटा कौन-सा है, यह आप कैसे कह सकेंगे?'' ''उनके सामने थोड़ी-सी घास डाल दीजिए माँ घोड़ी बच्चे के सामने घास सरका देगी।

इन सब कठिन प्रश्नों के उत्तर सुनकर देवता एवं राजा बहुत संतुष्ट हुए। राजा को जब पता चला कि ये उत्तर उस वृद्ध पिता ने दिए थे, जिसे मंत्री ने जमीन के नीचे घर बनाकर छिपा रखा था, तो वह कृतज्ञ हुआ और उसने बूढ़े लोगों को पहाड़ों पर छोड़ आने की प्रथा को बंद करवा दिया और उनके प्रति दयापूर्ण व्यवहार करने का आदेश दिया।

2. भारत की विदेह नगरी की रानी ने एक बार सपने में एक छह दाँतोंवाला सफेद हाथी देखा। रानी को उन हाथी दाँतों को पाने की तीव्र इच्छा हुई और उसने उन्हें लाने के लिए राजा से अनुनय किया। अपनी रानी को बहुत चाहनेवाला वह राजा इस असंभव-सी माँग को ठुकरा न सका और उसने घोषणा की कि जो भी आखेटक ऐसे हाथी को देखकर उसकी सूचना देगा उसे पुरस्कार दिया जाएगा।

संयोगवश हिमाचल पर्वत पर ठीक ऐसा छह दाँतोंवाला हाथी था, जो बुद्धत्व-प्राप्ति की साधना कर रहा था। इस हाथी ने एक बार पहाड़ों पर संकट के समय एक शिकारी की जान बचाई थी और वह शिकारी सुरक्षित अपने देश लौट सका था। वही शिकारी बड़े इनाम के लालच में अंधा हो गया और हाथी के उपकारों को भूलकर उसे मारने के लिए पर्वत की ओर चल पड़ा।

शिकारी जानता था कि हाथी बुद्धत्व-प्राप्ति की साधना कर रहा है, इसलिए उसने चीवर परिधानकर परिव्राजक का रूप धारण कर लिया: और इस प्रकार हाथी का आक्रमण के प्रति असावधानकर उस पर विषयुक्त बाण छोड़ा।

हाथी ने देखा कि उसका अन्त निकट आ रहा है और शिकारी पुरस्कार के लालच से अभिभूत है, तो उसे दया आ गई और बदला लेने पर तुले हुए दूसरे हाथियों के क्रोध से बचाने के लिए उस शिकारी को उसने अपने पैरों के नीचे छिपा लिया। फिर हाथी ने शिकारी से पूछा कि उसने ऐसा मूर्खता का काम क्यों किया। शिकारी ने पुरस्कार की बात कहीं और स्वीकार किया कि वह उसके छह दाँतों को पाना चाहता है। हाथी ने तुरन्त दाँतों को एक बड़े वृक्ष से टकराकर तोड़ डाला और शिकारी को देते हुए कहा ''इस दान के साथ मेरी बुद्धत्व-प्राप्ति की साधना पूर्ण हो गई है और मैं अब बुद्धक्षेत्र में पैदा हूँगा। जब मैं बुद्ध बनूँगा, तब तुम्हारे हृदय में घुसे हुए लोभ, क्रोध और मूढ़ता के तीन जहरीले बाणों को उखाड़ने में मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।''

3. हिमाचल पर्वत की तलहटी में किसी झुरमुट में एक तोता अन्य कोई पशु-पक्षियों के साथ रहता था। एक दिन तेज़ हवा के कारण बाँसों के घर्षण से उस झुरमुट में आग लग गइ और सभी पशु-पक्षी घबराकर इधर-उधर दौड़ने लगे। तोता, दीर्घकाल तक निवासस्थान देनेवाले झुरमुट के उपकरों का बदला चुकाने और संकट में पड़े हुए असंख्य पशु-पक्षियों के प्रति दयाभाव के कारण, उन्हें बचाने के लिए, निकट के तालाब में जाकर अपने पंख भिगाकर आग के ऊपर उड़ गया और उसे बुझाने के लिए अपने पंखों को फड़फड़ाकर पानी के बिन्दु छिड़कने लगा। झुरमुट के उपकारों को यादकर और असीम करुणा से भरे हृदय से वह बिना थकावट अनुभव किए यह काम करता रहा।

उसकी यह करुणा और आत्म-समर्पण की भावना देखकर स्वर्ण के एक देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आकाश से पृथ्वी पर उतरकर तोते से कहा, ''तुम बहुत बहादुर हो, किन्तु इतनी बड़ी आग पर पानी के कुछ छींटे गिराकर तुम किस लाभ की अपेक्षा करते हो?'' तोते ने उत्तर दिया: ''ऐसा कुछ भी नहीं जो कृतज्ञता ओर आत्मसमर्पण की भावना से सिद्ध नहीं हो सकता। मैं बार-बार कोशिश करता रहूँगा, फिर चाहे मुझे एक और जन्म क्यों न लेना पड़े।'' देवता तोते की इस भावना से बहत प्रभावित हुए और उन दोनों ने मिलकर आग को बुझा दिया।

4. किसी समय हिमाचल में जीवंजीव नामक एक पक्षी रहता था। उसके एक शरीर और दो सिर थे। एक दिन एक सिर ने देखा कि दूसरा सिर कोई स्वादिष्ट मीठा फल खा रहा है, तो उसके मन में ईर्ष्या पैदा हुई

और उसने कहा, ''तो फिर मैं विषैला फल खा लेता हूँ।'' इस प्रकार उसने विष खा लिया और पूरा पक्षी मर गया।

5. एक बार किसी साँप की पूँछ और सिर के बीच झगड़ा पैदा हुआ कि कौन आगे रहे। पूँछ नपे सिर से कहा, ''हमेशा तुम आगे रहते हो, यह ठीक नहीं है, तुम्हें कभी मुझे भी आगे रहने का अवसर देना चाहिए।' सिर ने उत्तर दिया, ''यह तो प्रकृति का नियम है कि मैं आग रहूँ; मैं तुम्हारे साथ स्थान बदल नहीं सकता।''

किन्तु झगड़ा चलता रहा औ एक दिन पूँछ ने गुस्से से अपने-आप को पेड़ से बाँध लिया और इस प्रकार सिर को आगे बढ़ने से रोक दिया। जब सिर इस संघर्ष से थककर लोथपोथ हो गया तब पूँछ ने अवसर देखकर मन की कर डाली। नतीजा यह हुआ कि वह साँप आग के कंड में गिर गया और मर गया।

इस विश्व में हर एक वस्तु का समुचित क्रम और अपना निश्चिय कार्यक्षेत्र होता है। असंतोष के कारण इस क्रम को यदि तोड़ा जाए, तो सरलता से कार्य करने में बाधा पैदा होगी और सारी व्यवस्था टूट जाएगी।

6. एक अत्यन्त शीघ्रकोपी मनुष्य था। एक दिन दो आदमी उस मनुष्य के घर के सामने उसके संबध में बातें कर रहे थे। एक ने दूसरे से कहा : ''यह आदमी वैसे तो अच्छा है, पर बहुत अधीर है; स्वभाव से क्रोधी है और जल्दी गुस्सा हो जाता है।'' वह मनुष्य यह सुनते ही घर से बाहर निकल आया और उसने दोनों पर हमला कर उन्हें पीटते हुए, घायल कर दिया।

जब प्रज्ञावान मनुष्य का उसकी भूलों की ओर ध्यान दिलाया जाए, तो वह उन पर गौर करेगा और अपने को सुधार लेगा। किन्तु मूर्ख मनुष्य का उसके दुराचरण के प्रति ध्यान दिलाया जाए तो न केवल वह उसकी उपेक्षा करेगा, अपितु फिर वही गलती करेगा।

7. किसी समय एक धनी किन्त मूर्ख मनुष्य रहता था। एक बार उसने किसी दूसरे आदमी का सुन्दर तिमंजिला भवन देखा और उसे ईर्ष्या हुई। यह सोचकर कि मैं भी तो इतना धनी हूँ, उसने अपने लिए ठीक वैसा ही भवन बनवाने का निश्चय किया। उसने बढ़ई को बुलाकर मकान बनाने का आदेश दिया। बढ़ई ने तुरन्त स्वीकार किया और पहले बुनियाद बनाकर फिर उस पर पहली मंजिल, दूसरी मंजिल और अन्त में तीसरी मंजिल बनाने का निश्चय किया। धनी मनुष्य का धीरज छूट गया और उसने कहा: 'मुझ बुनियाद या पहला या दूसरा मंजिला नहं केवल वहीं सुन्दर तिमंजिला चाहिए। उसे जल्दी बना दो।''

मूर्ख मनुष्य बिना परिश्रम और प्रयास के ही अच्छे परिमाणों की अपेक्षा रखता है। किन्तु जैसे बुनियाद के बिना तीसरा मंजिला बन ही नहीं सकता ठीक वैसे ही बिना परिश्रम और प्रयास के अच्छे परिणाम या फल प्राप्त नहीं हो सकते।

8. एक बार एक मूर्ख मनुष्य शहद उबाल रहा था। अचानक उसका मित्र वहाँ आ पहुँचा। मूख ने उसे कुछ शहद देना चाहा, किन्तु वह बहुत गरम था; इसलिए वह मूर्ख उसे आग पर से उतारे बिना ही ठंडा करने के लिए

पंखा झलता रहा। उसी तरह क्लेशों की आग बुझाए बिना शीतल निर्वाण के मधु को प्राप्त करना चाहें, तो उसकी प्राप्ति सर्वथा असंभव है।

9. किसी समय दो राक्षस एक बक्से, एक छड़ी और जूतों के एक जोड़े को लेकर दिन-भर विवाद करते और झगड़ते रहे। वहाँ से गुजरते हुए एक आदमी ने यह देखा और पूछा ''तुम दोनों इन चीजों को लेकर क्यों विवाद कर रहे हो? इनमें ऐसी कौन-सी अद्‌भुत शक्ति है कि तुम दोनों को इन्हें पाने के लिए इतना झगड़ा करना पड़े?''

राक्षसों ने उसे बताया कि बक्से से उन्हें कोई भी इच्छित वस्तु प्राप्त हो सकती है–फिर वह अन्न हो, वस्त्र हो या धन, छड़ी से वे अपने सभी शत्रुओं का पराजय कर सकते हैं और जूते पहनने से वे आसमान में उड़कर जा सकते हैं।

यह सुनकर उस आदमी ने कहा: ''झगड़ते क्यों हो? यदि तुम दोनों थोड़ी देर के लिए यहाँ से चले जाओ तो मैं तुम दोनों के बीच इन वस्तुओं का समान विभाजन करने की तरकीब सोच सकूँगा।'' ज्यों ही दोनों राक्षस वहाँ से गए, उस आदमी ने जूते पहन लिये, बक्स को और छड़ी को उठा लिया और देखते-देखते आसमान में उड़कर चला गया।

ये 'राक्षस' विधर्मी लोगों के प्रतिनिधि है। 'बक्सा' दान-पुण्य का प्रतीक है; वे नहीं जानते कि दान-पुण्य से कितने प्रकार की संपत्ति पैदा हो सकती है। 'छड़ी' का मतलब है, चित्त को एकाग्र करने की साधना। लोग जानते नहीं कि चित्त को एकाग्र करने की आध्यात्मिक साधना के

कारण वे क्लेशों-रूपी मार पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। 'जूतों के एक जोड़े' का मतलब है, विचार और आचरण क पवित्र शील, जो उन्हें सभी लालसाओं और विवादों के परे ले जाते हैं। इन्हें न जानने के कारण वे बक्से, छड़ी और जूतों के बारे में लड़ते और विवाद करते रहते हैं।

10. एक बार एक आदमी अकेला यात्रा कर रहा था। एक रात उसने एक खाली घर देखा और उसमें रात गुजारने का निश्चय किया। लगभग आधी रात को एक राक्षस एक शव ले आया और उसे फर्श पर रखा। कुछ ही देर बाद, और एक राक्षस आया और कहने लगा कि, ''यह तो मेरा शव है।'' इसलिए दोनों में उसके बारे में झगड़ा शुरू हो गया।

तब पहले राक्षस ने कहा कि इसके बारे में और झगड़ा करने से कोई फायदा नहीं और सुझाया कि किसी न्यायाधीश के पास चलकर निर्णय करवाएँगे कि इस पर किसका अधिकार है। दूसरे राक्षस ने यह मान्य किया और कोने में छिपकर सिकुड़कर बैठे हुए आदमी को देखकर उसे शव के स्वामित्व का निर्णय करने को कहा। वह आदमी भय से काँपने लगा क्योंकि जानता था कि वह चाहे जो भी निर्णय दे हारे हुए राक्षस को नाराज करेगा और बदला लेने के लिए वह उसे मार डालेगा। किन्तु उसने जो देखा वही ईमानदारी से कहने का निश्चय किया।

जैसे कि अपेक्षित था, इससे दूसरा राक्षस गुस्से से भर गया और उसने उस आदमी का हाथ पकड़कर कन्धे से उखाड़ दिया। किन्तु पहले राक्षस ने उसके बदले में शव से लिया हुआ हाथ जोड़ दिया। क्रुद्ध राक्षस

ने आदमी का दूसरा हाथ उखाड़ डाला, किन्तु पहले राक्षस ने तुरन्त उसके बदले में शव से दूसरा हाथ लेकर जोड़ दिया। ऐसा करते-करते उस आदमी के दोनों हाथ, पैर और सिर तक एक के बाद एक उखाड़ दिए गए और शव के उन-उन अवयवों से बदल दिए गए। फिर दोनों राक्षस फर्श पर बिखरे हुए उस आदमी के अवयवों को उठा उठाकर खा गए और मुँह पोंछकर चल दिए।

उस सुनसान घर में आश्रय लेने आया हुआ वह आदमी अपने दुर्भाग्य से बहुत उद्विग्न हो गया। राक्षसों द्वारा खाए गए उसके अवयव माता-पिता से मिले हुए थे और अब जो अवयव उसके शरीर से जुड़े हुए थे वे उस शव के थे। तो वह कौन था? सारे तथ्यों को जानते हुए, उसकी समझ में कुछ भी न आ रहा था इसलिए पागल-सा होकर वह घर से बाहर निकल आया। रास्ते में एक मन्दिर देखकर वह उसमें चला गया और वहाँ उसने भिक्षुओं को अपनी आपबीतो कही। लोग उसकी कहानी में अनात्म के सिद्धान्त का सच्चा अर्थ देख सके।

11. किसी घर के द्वार पर सुन्दर और अच्छे वस्त्र पहने हुए एक स्त्री आ खड़ी हुई। घर के स्वामी ने उससे पूछा कि तुम कौन हो तो उसने उत्तर दिया कि वह संपत्ति की देवी लक्ष्मी है। घर का स्वामी बहत प्रसन्न हुआ। और उसने उसका अच्छा स्वागत-सत्कार किया।

उसके तुरन्त बाद और एक स्त्री आई, तो देखने में कुरूप थी और फटे हुए कपड़े पहने हुए थी। घर के स्वामी ने उससे भी पूछा कि तुम कौन हो तो उसने उत्तर दिया वह दरिद्रता की देवी है। गृहस्थ घबराया और उसने उसे घर से बाहर भगाने की कोशिश की, किन्तु उस स्त्री ने जाने से इन्कार कर दिया और कहा, ''लक्ष्मी मेरी बहन है। हम दोनों में समझौता है कि हम कभी एक दूसरे से अलग नहीं रहेंगी। अगर तुमने मुझे भगा दिया, तो उसे भी मेरे साथ जाना पड़ेगा। और सचमुच ज्योंहो वह कुरूप स्त्री बाहर निकली, दूसरी स्त्री भी गायब हो गई।

जन्म के साथ मरण जुड़ा है। सौभाग्य के साथ दुर्भाग्य जुड़ा हुआ है। बुरी बातें अच्छी बातों के पीछे-पीछे चलती है। मनुष्यों को यह पूर्ण रूप से समझना चाहिए। मूर्ख लोग दुर्भाग्य से डरते हैं। और कवल सौभाग्य के पीछे भागते हैं। किन्तु निर्वाण की कामना रखनेवालों को इन दोनों के परे होना चाहिए और दोनों में से किसी से भी आसक्त नहीं होना चाहिए।

12. पुराने समय में एक गरीब चित्रकार रहता था। अपनी पत्नी को गाँव में छोड़कर वह अपने भाग्य की परीक्षा करने यात्रा पर निकल पड़ा। लगातार तीन वर्ष कठिन परिश्रम करके उसने तीन सौ सुवर्ण मुद्राएँ बचाईं और घर लौटने का निश्चय किया। रास्ते में एक जगह उसने देखा कि बहुत-से भिक्षुओं को दान-दक्षिणा देने का महोत्सव मनाया जा रहा है। वह उससे बहुत प्रभावित हुआ और उसने सोचा: ''अब तक मैं इहलोक के सुख का ही विचार करता रहा; परलोक के सुख का मैंने कभी विचार नहीं किया। मेरा यह सौभाग्य है कि मैं इस जगह पहुँच गया हूँ। मुझे पुण्य

के बीज बोने के लिए इस अवसर का लाभ अवश्य उठाना चाहिए।'' इस प्रकार सोचकर उसने अपनो सारी बचत उदारता से दान में दे डाली और अकिंचन बनकर अपने घर लौटा।

जब वह घर पहुँचा तब खाली हाथ लौटे हुए पति को देखकर पत्नी ने उसे बहुत फटकारा और पूछा कि पैसों का क्या हुआ? गरीब चित्रकार ने उत्तर दिया कि उसने कुछ पैसा कमाया तो था, किन्तु उसे किसी सुरक्षित स्थान पर रख छोड़ा है। पत्नी ने जब हठ पकड़कर बताने के लिए बाध्य किया कि धन कहाँ छिपाया है, तब उसने कबूल किया कि वह किसी भिक्षुओं के संघ को दे आया है।

इससे पत्नी बहुत गुस्सा हो गई और उसने पति को बहुत डाँटा। अन्त में यह मामला स्थानीय न्यायाधीश के पास ले जाया गया। न्यायाधीश ने जब चित्रकार को अपनी सफाई देने को कहा, तब चित्रकार ने कहा कि उसने कोई मूर्खता का काम नहीं किया, क्योंकि उसने बहुत दीर्घकाल तक और कठिन परिश्रम से पैसा कमाया था और उसका उपयोग वह भावी सौभाग्य का बीज बोने के लिए करना चाहता था। जब उसने भिक्षुओं का विहार देखा तो उसे लगा कि यहाँ वह क्षेत्र है जिसमें उसे सौभाग्य के बीज के रूप में सोना बो देना चाहिए। उसने आगे कहा: ''जब मैंने भिक्षुओं को सोना दान में दिया तब मुझे लगा कि मै अपने मन से सारा लोभ और कृपणता निकाल फेंक रहा हूँ, और मुझे पूर्णरूप से ज्ञात हुआ कि सच्ची संपत्ति सोना नहीं किन्तु मन है''

न्यायाधीश ने चित्रकार की भावना को सराहा और जिन्होंने यह बात सुनी, उन्होंने उसे सभी प्रकार की सहायता देकर अपनी सहारना प्रकट की। इस प्रकार चित्रकार और उसकी पत्नी न स्थायी सौभाग्य में प्रवेश किया।

13. एक आदमी कब्रस्तान के नज़दीक रहता था। एक रात उसयने सुना कि कब्र में से उसे कोई बार-बार बुला रहा है। वह इतना डरपोक था कि उसे खुद जाकर जाँच-पड़ताल करने का साहस न हुआ। किन्तु दूसरे दिन उसने अपने एक साहसी मित्र से इसका जिक्र किया। मित्र ने निश्चय किया कि वह अगली रात कब्रस्तान जाकर जहाँ से आवाज आती है उस स्थान का पता लगाएगा।

जब डरपोक आदमी भय से थर-थर काँप रहा था, उसका मित्र कब्रस्तान गया और सचमुच वहीं आवाज कब्र में से आती हुई सुनाई दी। मित्र ने पूछा कि तुम कौन हो और तुम्हें क्या चाहिए? तब जमीन के नीचे से आवाज ने उत्तर दिया: ''मैं गुप्त खजाना हूँ और अपने-आपको किसी को दे देना चाहता हूँ। मैंने कल रात उस आदमी को देना चाहा, किन्तु वह इतना डरपोक है कि आने की हिम्मत नहीं कर सका। तुम बहादुर हो इसलिए मुझे प्राप्त करने के योग्य हो। कल मैं अपने सात अनुचरों को लेकर तुम्हारे घर आऊँगा।''

मित्र ने कहा, ''मैं आप लोगों की प्रतिक्षा करूँगा, किन्तु कृपया बताएँ कि आपका कैसे आदर-सत्कार किया जाए?''आवाज ने उत्तर दिया: ''हम लोग भिक्षुओं के वेष में आएँगे। तुम स्नान करके कमरा साफ करके रखो। कमरे में पानी रख देना ओर आठ कटोरे पतले चावल से भरकर हमारी प्रतीक्षा करना। भोजन के पश्चात् तुम हमें एक-एक करके बन्द कमरे में ले चलना, जहाँ हम अपने-आपको सोने के घड़े में बदल देंगे।

दूसरे दिन उस मनुष्य ने उसे जैसा कहा गया था ठीक उसी प्रकार स्नान करके कमरे की सफाई की और उन आठ भिक्षुओं के आने की

प्रतीक्षा करता रहा। ठीक समय पर वे प्रकट हुए और उसने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया। जब उन्होंने खाना खा लिया तब वह उन्हें एक-एक करके बन्द कमरे में ले गया, जहाँ हर भिक्षु ने अपने-आपको सुवर्ण से भरे घड़े में बदल दिया।

उसी गाँव में एक बहुत ही लोभी मनुष्य रहता था। उसने यह घटना सुनी और उसे भी सोने के घड़े पाने की इच्छा हुई। उसने आठ भिक्षुआं को अपने घर पर निर्मंत्रित किया। उन्हें खाना खिलाने के बाद वह उन्हें एक बन्द कमरे में ले गया, किन्तु, अपने-आपको सोने के घड़ों में परिवर्तित करने के बदले वे बहत नाराज हो गए और उन्होंने पुलिस के पास उस लोभी आदमी की शिकायत की और वह कैद कर लिया गया।

और डरपोक आदमी, जिसका नाम पहले पुकारा गया था, जब उसने सुना कि कब्र को आवाज ने बहादुर आदमी को बहुत संपत्ति दी है, तो उसने मन में भी लोभ पैदा हुआ। उस बहादुर आदमी के घर जाकर वह जोर से कहने लगा कि शुरू में उस आवाज ने मुझी को बुलाया था, इसलिए वे सब घड़े मेरे ही हैं। जब उस डरपोक आदमी ने घर में घुसकर घड़े में जाने का प्रयत्न किया तो क्या देखता है कि घड़ों में बहुत से साँप फन उठाए उस पर हमला करने को तैयार हैं।

उस देश के राजा ने यह सुना तो अपना निर्णय दिया कि वे घड़े उस बहादुर आदमी के ही हैं। फिर राजा ने अपना यह अभिप्राय प्रकट किया, ''यही दुनिया की परिपाटी है। मूर्ख लोग केवल अच्छे फलों का लोभ

करते हैं, किन्तु इतने डरपोक होते हैं कि उनके लिए प्रयास नहीं करते और सदा असफल रहते हैं। उनमें न तो इतनी श्रद्धा होती है न साहस कि अपने मन के आन्तरिक संघर्षों का डटकर सामना करें, जिसके द्वारा ही सच्ची शांति प्राप्त हो सकती है।''

द्वितीय अध्याय

प्रत्यक्ष आचरण का मार्ग

1
सत्य का अन्वेषण

1. सत्य के अन्वेषण में कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका कोई महत्त्व नहीं होता। इस विश्व का निर्माण किस वस्तु से किया गया है? क्या यह विश्व अनन्त है? विश्व की कोई सीमाएँ हैं या नहीं? समाज का गठन किस प्रकार हुआ? समाज के लिए संगठन का आदर्श रूप क्या होगा? यदि मनुष्य कहे कि जब तक इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता, वह निर्वाण की खोज और साधना स्थगित रखेगा, तो निर्वाण-पथ प्राप्त करने से पहले ही वह मर जाएगा।

मान लीजिए कि किसी मनुष्य को एक विषैला बाण लगा और उसके रिश्तेदार और मित्र उस बाण को निकलवाने और घाव का इलाज कराने के लिए किसी वैद्य को बुलाते हैं।

अब यदि वह घायल मना करे और कहे कि जरा ठहरिए। इसे खींच निकालने से पहले मैं जानना चाहता हूँ कि यह बाण किसने मारा? जिसने मारा वह पुरुष था या स्त्री? वह ऊँचे खानदान का था या गँवार किसान?

फिर धनुष किस चीज का बना हुआ था? जिस धनुष से बाण मारा गया वह बड़ा था या छोटा? वह लकड़ी का बना हुआ था या बाँस का? उसकी प्रत्यंचा किस चीज़ की बनी हुई थी? तंतु की बनी हुई थी या आँत की? बाण बेंत का बना हुआ था या सरकण्डे का? उसमें किस तरह के पर लगे हुए थे? बाण निकाले जाने से पहले मैं इन सब बातों के बारे में जानना चाहता हूँ।'' तो क्या होगा?

यह सारी जानकारी प्राप्त करने से पहले, निस्संदेह, विष का सारे शरीर में फैलने का समय मिल जाएगा और वह मनुष्य मरेगा। पहला काम बाण को निकालना और विष को फैलने से रोकना है।

जब वासना की आग ने संसार को संकट में डाल रखा है, तब विश्व की रचना का सवाल कोई महत्त्व नहीं रखता, मानव-समाज का आदर्श रूप क्या हो, यह बात भी इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है।

विश्व की सीमाएँ हैं या नहीं, विश्व अनन्त है या नहीं, इस समस्या को तब तक एक तरफ रखा जा सकता है, जब तक कि जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु की अग्नियों को बुझा न लिया जाए। शोक, विलाप, दुःख और पीड़ा से भरे इस संसार में हमें पहले इन समस्याओं के हल का मार्ग ढूँढ़ना चाहिए और निष्ठापूर्वक उस मार्ग का आचरण करना चाहिए।

भगवान बुद्ध के उपदेश में जिन बातों के बारे में उपदेश करना अत्यावश्यक है (व्याकृत) उन्हीं के बारे में उपदेश किया गया है,

अनावश्यक (अव्याकृत) बातों की चर्चा नहीं की गई। उनकी बातों का सारतत्त्व यह है कि लोगों को जानने योग्य बातों को जान लेना चाहिए। त्यागने योग्य बातों का त्याग करना चाहिए, और साक्षात्कार करने योग्य बातों के लिए साधना करनी चाहिए।

इसलिए लोगों को सर्वप्रथम तो यह तय करना चाहिए कि सबसे महत्त्वपूर्ण बात क्या है। उनके अपने जीवन में कौन-सी समस्या सर्वतोमुखी है, सबसे पहले ध्यान देने योग्य समस्या क्या है यह जानकर, मनोनिग्रह की साधना आरंभ कर देनी चाहिए।

2. मान लीजिए कि कोई आदमी वन में वृक्ष के तने के भीतर का गूदा लेने के लिए जाए और शाखाओं और पत्तों का भार लेकर लौटे और यह मान बैठे कि जिस चीज में लिए वह गया था, वह प्राप्त हो गई, गूदे के बदले छाल और टहनियाँ पाकर संतोष कर ले तो क्या यह उसकी मूर्खता न होगी! किन्तु यही बात अधिकतर लोग कर रहे हैं।

कोई मनुष्य जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु अथवा शोक, विलाप, दुःख और पीड़ा से मुक्ति दिलानेवाले मार्ग पर चलने लगता है, और थोड़ी दूर चलकर, साधना में कुछ प्रगति होते ही, एकदम घमंडी, आत्मश्लाघी और हेकड़ बन जाता है। यह उसी आदमी के समान है जो गूदा पाने के लिए गया और टहनियों और पत्तो के भार से संतोष मानकर लौट आया।

दूसरा मनुष्य थोड़े-से प्रयास से जो कुछ प्रगति हुई उसो से संतोष मानकर साधना में ढील देता है और घमंडी, आत्मश्लाघी और हेकड़ हो जाता है तो यह मनुष्य भी गूदे के बदले टहनियों का भार उठाकर लौटनेवाले मनुष्य के समान है।

और भी एक मनुष्य है, जो अपने मन को शांत और विचारों को शुद्ध होते हुए देखकर साधना में ढीला पड़ जाता है और घमंडी, आत्मश्लघी और हेकड़ हो जाता है; वह भी गूदे के बदले में वृक्ष की छाल का भार ढो रहा होता है।

फिर वह मनुष्य जो जरा-सी अन्तर्दृष्टि पाकर चौंधिया जाता और घमंडी, आत्मश्लाघी और हेकड़ बन जाता है उसने भी गूदे के बदले छाल ही पायी है। ऐसे सभी साधक, जो अपने अपर्याप्त प्रयास से सन्तुष्ट हो जाते हैं, घमंडी और हेकड़ होकर साधना में ढीले पड़ जाते हैं और आसानी से आलस्य के शिकार हो जाते हैं, ये सभी लोग निःसंशय पुनः दुःख भोगेंगे।

निर्वाण की कामना करनेवालों का कार्य आसान नहीं होता; उन्हें इस मार्ग में आदर, मान और प्रतिष्ठा की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। न उन्हें अल्प प्रयास से चित्त की शांतिए ज्ञान अथवा अन्तर्दृष्टि में जो थोड़ी सी प्रगति होती है उससे संतोष मानना चाहिए।

सब से पहले तो हमें जन्म-मरणवाले इस संसार में वास्तविक स्वरूप को सही-सही समझना होगा।

3. यह संसार किसी ठोस तत्त्व पर आधारित नहीं, एकदम निस्सार है। जिसे हम संसार कहते हैं वह कार्य-कारण की एक व्यापक शृंखला ही है। कार्य-कारण अथवा हेत प्रत्यय मन की उपज है; ऐसे मन की जो अज्ञान, भ्रान्त धारणाओं, वासनाओं और मोह द्वारा उत्तेजित होता रहता है। बाह्य जगत् का तो अपना कोई अस्तित्व नहीं होता, इसलिए, भ्रान्ति बाह्य जगत् में नहीं मन के भ्रान्त व्यापारों के ही कारण है। बाह्य जगत् का अस्तित्व, उसकी उत्पत्ति और रचना मन की वासनाओं द्वारा होती है; मन के अपने लाभ, क्रोध और मूढ़ता के कारण पैदा हुई पीड़ा से सांसारिक दु:ख और संघर्ष पैदा होते हैं। निर्वाण के पथ पर चलनेवाले मनुष्यों को, अपने ध्येय की सिद्धि के लिए, ऐसे मन से संषर्ष करने की साधना करनी चाहिए।

4. ''हे मेरे मन! तुम जीवन की परिवर्तनशील परिस्थितियों पर इतनी बेचैनी से क्यों मँडराते रहते हो? तुम मुझे इतना भ्रान्त और अस्वस्थ क्यों करते हो? तुम मुझे इतनी सारी चीज़ें इकट्ठा करने के लिए क्यों प्रवृत्त करते हो? तुम उस हल के समान हो, जो खेत में चलने से पहले ही टूट जाता है; तुम उस पतवार के समान हो, जो जीवन-मरण के सागर को पार करने की यात्रा पर चलने से पहले ही टूट जाता है। यदि हम इस जन्म को सार्थक न कर सके, तो अब तक के असंख्य पुनर्जन्मों का क्या लाभ?

''हे मेरे मन! एक बार तुमने मुझे राजा का जन्म दिलाया और फिर मुझे गरीब दरिद्र का जन्म दिलाकर अन्न की भीख माँगने के लिए बाध्य किया। कभी तो तुम मुझे देवताओं के स्वर्ग में जन्म दिलाकर भोगविलास

और हर्षोन्माद में जीवन व्यतीत करने का सौभाग्य प्रदान करते हो तो कभी नरक की ज्वालाओं में धकेल देते हो।

''हे मेरे मूर्ख मन! इस प्रकार तुम मुझे भिन्न-भिन्न मार्गों पर ले गए औरा मैं भी तुम्हारा आज्ञाकारी बनकर तुम्हारे वश में होता रहा। किन्तु अब मैंने बुद्ध के उपदेश का श्रवण किया है। अब मुझे अस्वस्थ मत करना या मेरी साधना में बाधा मत डालना। जिस उपाय से मैं तरह-तरह के दु:खों सें मुक्त हो जाऊँ और शीघ्रातिशीघ्र निर्वाण प्राप्त कर सकूँ इसके लिए प्रयास करना।

''हे मेरे मन! यदि तुम इतना ही जान लो कि यहाँ सब कुछ निस्सार और अनित्य है, यदि तुम वस्तुओं के प्रति आसक्ति न रखो, वस्तुओं को अपना न समझो, लोभ, क्रोध और मूढ़ता से मुक्त हो जाओ तो हमं शांति मिल जाएगी। यदि प्रज्ञा के खड्ग से आसक्तियों के बंधनों को काटकर, लाभ या हानि, स्तुति या निंदा से विचलित न बनो तो हम शांति से दिन गुजार सकेंगे।

''हे मेरे प्रिय मन! तुमने ही मुझमें पहले श्रद्धा उत्पन्न की, और तुम्हीं ने निर्वाण के पथ पर चलने की बात सुझाई। तो फिर क्यों इतनी आसानी से लोभ, आरामतलबी और आह्लादक उत्तेजना के वश हो जाते हो?

''हे मेरे मन! तुम इधर-उधर उद्देश्यहीन क्यों भटकते रहते हो? चलो, हम इस भ्रान्ति के सागर को पार कर जाएँ। अब तक मैं तुम्हारी इच्छा

के अनुसार सब कुछ करता आया, किन्तु अब तुम्हें मेरी इच्छा के अनुसार चलना होगा और हम मिलकर बुद्ध के उपदेश का अनुसरण करेंगे।

''हे मेरे प्रिय मन! ये पर्वत, नदियाँ और सागर सब परिवर्तनशील है और संकटों से भरे हुए हैं। इस भ्रान्तिमय संसार में सुख की अपेक्षा किससे करें? चलो, हम बुद्ध के उपदेश का अनुसरण करें और शीघ्र यह भवसागर पार करके निर्वाण प्राप्त कर लें।''

5. इस प्रकार, वास्तव में निर्वाण की कामना करने वाले लोग अपने मन को अपनी इच्छा के अनुसार आदेश देते हैं। फिर वे दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ते हैं। काई उनकी निन्दा करे या कोई उनका उपहास करे, वे अविचलित मन आगे बढ़ते जाते हैं। कोई उन्हें घूँसे लगाए या पत्थरों से मारे या तलवार से काटने पर ही क्यों न उतारू हो जाए वे मन में क्रोध को उभरने नहीं देते।

शत्रु चाहे धड़ से सिर को अलग कर दे, तो भी मन को विचलित नहों होने देना चाहिए। अत्याचारों के कारण मन कलुषित हो गया, तो वह बुद्ध के उपदेश का अनुसरण नहीं। चाहे जो भी बीते, निश्चयपूर्वक दृढ़ रहना चाहिए, अविचलित रहना चाहिए और सदा करुणा व सद्भावना के विचारों को फैलाते रहना चाहिए। भले ही कोई निन्दा करे या कैसी भी विपत्ति आन पड़े इस श्रद्धा के साथ कि इससे तो हृदय बुद्ध के उपदेश से और भी भर जाएगा, अविचलित और शांत रहने का निश्चय करना चाहिए।

निर्वाण-प्राप्त करने के लिए जो असाध्य है उसे साहय करने का

प्रयास करना चाहिए, जो असह्य है उसे सहना चाहिए, जो आसानी से दिया नहीं जा सकता, उसका भी दान करना चाहिए। यदि कहा जाए कि निर्वाण प्राप्त करने के लिए अपना आहार दिन में चापल के एक दाने तक सीमित करना चाहिए, तो उसका पालन करना चाहिए। निर्वाण का पथ आग में से होकर जाता हो, तो भी अग्निपथ पर आगे बढ़ने में हिचकना नहीं चाहिए।

और ये सारी बातें केवल दिखावे के लिए नहीं अपितु इसलिए करनी चाहिए कि इसी में बुद्धिमानी है, सत्याचरण है। और ये सारी बातें करुणा की भावना से करनी चाहिए, जैसे माँ अपने छोटे बच्चे की या अपने बीमार बच्चे की सेवा करते समय करती है और उस समय अपनी शक्ति या आराम का कोई विचार नहीं करती।

6. पुराने काल में एक राजा था। राजा प्रज्ञावान, अत्यंत दयालु और प्रजावत्सल था, इसलिए उसके देश में समृद्धि और शांति थी। वह राजा सदा श्रेष्ठ ज्ञान और निर्वाण की खोज में रहता था; और उसने घोषणा भी कर रखी थी कि जो भी उसे ज्येष्ठ धर्म का उपदेश देगा उसे बहुमूल्य पुरस्कार दिया जाएगा।

उसकी श्रद्धा और प्रज्ञा ने अन्त में देवताओं का भी ध्यान आकर्षित किया, किन्तु उन्होंने उसकी परीक्षा लेने का निश्चय किया। एक देवता यक्ष का रूप लेकर राजा के महल के द्वार पर जा खड़े हुए और बोले, ''मैं ज्येष्ठ धर्म को जानता हूँ। मुझे राजा के पास ले जाया जाए।''

राजा यह सन्देश सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने देवता को आदरपूर्वक अन्दर बुलाकर धर्म का उपदेश देने की प्रार्थना की। यक्ष ने अपना विकराल रूप धारण कर लिया और कहा, ''इस समय मुझे बहुत भूख लगी है। ऐसी बुभुक्षित अवस्था में धर्म का उपदेश नहीं किया जा सकेगा।'' तब उत्तम स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ उसे दिए गए, किन्तु उसने हठ पकड़कर कहा कि मुझे तो आदमी का गरम खून और माँस ही चाहिए। राजकुमार न उसे अपना शरीर दे दिया और रानी ने भी अपना शरीर अर्पण किया, किन्तु फिर भी यक्ष को संतोष नहीं हुआ और उसने राजा के शरीर की माँग की।

तब राजा ने शांति से कहा, ''मुझे अपने प्राणों की परवाह नहीं। किन्तु जब यह शरीर ही न रहेगा तो मैं धर्म कैसे सुन पाऊँगा? अत: मुझे पहले धर्म का उपदेश कीजिए। धर्म-ग्रहण करने के पश्चात् मैं आपको अपना शरीर दे दूँगा।''

तब यक्ष ने इस प्रकार धर्म का उपदेश किया: ''प्रिय वस्तुओं से शोक पैदा होता है, प्रिय वस्तुओं से भय पैदा होता है। जो प्रिय वस्तुओं से मुक्त हो गए, उन्हें शोक नहीं होता, तो भय कहाँ से होगा?'' फिर पलक मारते देवता ने अपना मूल रूप धारण किया। और साथ ही राजकुमार एवं रानी भी अपने मूल शरीरों में प्रकट हो गए।

7. बहुत पुराने काल में हिमालय पर्वत पर सत्य की खोज करनेवाला एक मनुष्य रहता था। उसे पृथ्वी पर की सभी संपत्तियों का तो क्या, स्वर्ग के उपभोगां तक का कोई आकर्षण न था, उसे चाह थी चित्त की सभी भ्रान्तियाँ दूर करनेवाले उपदेश की।

देवता उसकी तत्परता और सत्यनिष्ठा से प्रभावित हुए और उन्होंने उसके चित्त की परीक्षा लेने की ठानी। इसलिए उसमें से एक देवता ने

यक्ष का रूप धारण किया और वह गाता हुआ हिमालय में प्रकट हुआ कि ''सब कुछ परिवर्तनशील है, सभी वस्तुएँ उत्पन्न होती और नष्ट हो जाती हैं।''

साधक को गीत सुनकर बहुत खुशी हुई। उसे इतनी खुशी हुई जितनी कि प्यासे को ठंडे जल का झरना पाकर होती है या अचानक मुक्त किए दास को होती है। उसने अपने-आपसे कहा, ''जिस सत्य की मैं इतने दिन खोज में था वह अन्ततः मुझे मिल गया।'' वह आवाज की दिशा में चला गया और अंत में उसे वह भयानक यक्ष दिखाई दिया। डरते-डरते वह यक्ष के पास गया और उससे कहा, ''क्या तुम्हीं वह पावन गीत गा रहे थे, जो मैंने अभी सुना? यदि तुम्हीं हो तो कृपा करके और आगे सुनाओ।''

यक्ष ने उत्तर दिया, ''जी हाँ , वह मेरा ही गीत था, किन्तु जब तक मुझे कुछ खाने को न मिले, मैं और गा नहीं पाऊँगा। मैं बहुत भूखा हूँ।''

उस मनुष्य ने उससे और आगे गाने के लिए आग्रहपूर्वक प्रार्थना करते हुए कहा, ''गीत में मेरे लिए पवित्र अर्थ भरा हुआ है और मैं दीर्घ काल से इस उपदेश की खोज में था। मैंने उसका कुछ ही हिस्सा सुना है, कृपया और आगे सुनाओ।''

यक्ष ने फिर कहा: ''मैं भूख से व्याकुल हूँ। यदि मुझे मनुष्य का ताजा माँस और खून चखने को मिले, तो मैं उस गाने को पूरा कर सकूँगा।''

मनुष्य ने उपदेश सुनने की उत्कंठा से उस यक्ष को वचन दे दिया कि

उपदेश सुनने के बाद वह उसका शरीर ले सकते है। तब यक्ष ने पूरा गीत गाकर सुनाया:

सब कुछ परिवर्तनशील है,
सब वस्तुएँ उत्पन्न होती और नष्ट हो जाती हैं,
जीवन-मरण से परे होने पर ही
परम शांति प्राप्त होती है।

यह सुनकर, वह मनुष्य इस कविता को आसपास की शिलाओं और वृक्षों पर लिखकर चुपचाप पेड़ पर चढ़ गया और वहाँ से अपने आपको यज्ञ के चरणों में फेंक दिया; किन्तु यक्ष अन्तर्धान हो गया और बदले में एक दिव्य देवता ने उस मनुष्य के शरीर को झेल लिया, जिससे उसे कोई चोट नहीं पहुँची।

8. किसी समय निर्वाण के पथ की खोज करनेवाला सदाप्ररुदित नाम का एक साधक था। उसने लाभ या सम्मान के हर प्रलोभन को त्याग दिया था और वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर निर्वाण के पथ की खोज कर रहा था। एक दिन उसे आकाशवाणी सुनाई दी, ''हे सदाप्ररुदित! सीधे पूर्व की ओर जा। गरमी या ठंड की परवाह न करना, लोक-स्तुति या निन्दा की ओर ध्यान न देना, अच्छे या बुरे के निर्णय की भी चिंता न करना, बस पूर्व की ओर चलते रहना। अतिपूर्व में तुम्हें एक सच्चा गुरु प्राप्त होगा और तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।''

सदाप्ररुदित यह निश्चित आदेश पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने तुरन्त पूर्व की ओर प्रस्थान किया। सुनसान मैदान हो या बीहड़ पहाड़, जहाँ भी रात हो वहीं वह सो जाता था।

परदेश में अजनबी होने के कारण उसे बहुत अपमान सहन करने पड़े; एक बार उसने अपने-आपको दास के रूप में बेच दिया और अपनी भूख मिटाने के लिए उसे अपना माँस बेचना पड़ा; किन्तु अन्त में सच्चे गुरु से उसकी भेंट हो गई। उसने गुरु से ज्ञानदान की प्रार्थना की।

एक कहावत है, 'अच्छी वस्तुएँ महँगी होती हैं।' और सदाप्ररुदित को अपने जीवन में यह अनुभव हो चुका था। सन्मार्ग की खोज में उसे बहुत संकटों का सामना करना पड़ा था। उसके पास गुरु को अर्पित करने के लिए फल-फूल खरीदने को भी पैसा न था। उसने परिश्रम करके पैसा कमाने की कोशिश की, किन्तु उसे काम देने को कोई तैयार न हुआ। जहाँ भी वह जाता, मार उसके काम मं बाधा डालने पहुँच जाता। निर्वाण का मार्ग बहुत कठिन है और हो सकता है कि मनुष्य को उसके लिए अपने प्राण भी निछावर करने पड़ें।

आखिर सदाप्ररुदित गुरु के पास पहुँच ही गया। लेकिन फिर एक नई समस्या उसके सामने आ खड़ी हुई। गुरु का उपदेश लिखने के लिए उसके पास न तो कागज था, न कलम, न स्याही। उसने तलवार से अपनी कलाई काटी और अपने रक्त से गुरु का उपदेश लिपिबद्ध किया। इस प्रकार उसने परमसत्य को प्राप्त किया।

9. पुराने काल में सुधन नाम का एक लड़का था। सम्यक्संबोधि प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित वह एकाग्र होकर मार्ग की खोज करने लगा। एक मछुए से उसने समुद्र का ज्ञान प्राप्त किया। एक वैद्य से उसने कष्ट पीड़ित रोगियों के प्रति करुणा से व्यवहार करना सीखा। एक धनी से

उसने सीखा कि कौड़ी-कौड़ी बचाना ही धनी होने का रहस्य है और इससे उसे यह समझ में आ गया कि निर्वाण के पथ पर छोटी-सी उपलब्धि को भी हाथ से न जाने देना कितना आवश्यक है।

एक ध्यानमार्गी भिक्षु से उसने सीखा की पवित्र और शांत मन में दूसरों के मन की पवित्र और शांति देने की कितनी अद्‌भुत शक्ति होती है। एक दिन किसी असाधारण व्यक्तित्ववाली महिला से उसकी भेंट हो गई और उसके परोपकारी स्वभाव से प्रभावित सुधन ने सीखा की परोकार ज्ञान का ही फल है। एक बार किसी वृद्ध परिव्राजक से उसकी भेंट हुई, जिसने उससे कहा कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए तुम्हें तलवारों का पहाड़ लाँघकर जाना होगा और अग्नि की घाटी में से गुजरना होगा। इस प्रकार सुधन ने अपने अनुभव से सीखा कि उसने जो भी देखा या सुना वह सब सदुपदेश ही था।

एक गरीब, अपंग स्त्री से उसने धैर्य की शिक्षा ली। रास्ते में खेलते हुए बच्चों को देखकर उसने सहज आनन्द का पाठ सीखा। कुछ सौम्य एवं विनम्र स्वभाव के लोगों से, जो दूसरों द्वारा इच्छित वस्तुओ की कभी चाह नहीं रखते थे, उसने संसार के सभी लोगों के साथ मिल-जुलकर रहने का रहस्य सीखा।

अगरु के लिए अलग-अलग द्रव्यों के मिश्रण को देखकर उसने सामंजस्य का सबक सीखा और फूलों की सजावट के द्वारा धन्यवाद ज्ञापन की शिक्षा प्राप्त की। एक दिन, वन में से गुजरते हुए वह एक वृक्ष के नीचे आराम करने बैठ गया और उसने देखा कि गिरकर सड़ते हुए वृक्ष के समीप ही एक छोटा-सा पौधा उगा हुआ है; उससे उसने जीवन

की अनित्यता का ज्ञान प्राप्त किया।

दिन में सूर्य का प्रकाश और रात को टिमटिमाते तारे उसके मन को ताजगी देते थे। इस प्रकार सुधन ने अपनी लम्बी यात्रा के विविध अनुभवों से लाभ उठाया।

सचमुच, जो निर्वाण की कामना करते हैं उन्हें चाहिए कि अपने हृदय को किला समझें और बुद्ध के प्रवेश के लिए उसके दरवाजे पूरे खोल दें और विनम्रता से उन्हे अन्तरतम कक्ष में निमन्त्रित कर श्रद्धा का सुगन्धित अगरु तथा कृतज्ञता और प्रसन्नता के पष्प अर्पित करें।

2
आचरण के विविध माग

1. सम्यक्संबोधि की कामना करनेवालों को आचरण के तीन मार्गों को समझ लेना चाहिए और उनका अनुसरण करना चाहिए; पहला है शीलों का पालन, दूसरा है ध्यान की साधना और तीसरा है प्रज्ञा का विकास।

शील क्या है? हर एक को, चाहे वह भिक्षु हो या उपासक, शीलों का पालन करना चाहिए। उसे अपने चित्त और शरीर को नियंत्रित कर पाँच इन्द्रिय द्वारों की रखवाली करनी चाहिए। उसे छोटे से छोटे पाप से भी डरना चाहिए और हर क्षण केवल सदाचरण करने का प्रयास करते रहना चाहिए।

ध्यान का क्या अर्थ है? उसका अर्थ है चित्त में लोभ और पाप-वास्नाएं उठते ही उनका त्याग करना और चित्त को पवित्र और शान्त रखना।

प्रज्ञा क्या है? वह हे चार आर्यसत्यों का सम्यक् आकलन और उनका धैर्यपूर्वक पालन। यह दु:ख है, यह दु:ख समुदय है, यह दु:खनिरोध है और यह दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा है—इस प्रकार स्पष्ट रूप से साक्षाकार करना चाहिए।

जो इन तीन मार्गों का आस्था से अनुसरण करते हैं वे ही बुद्ध भगवान के सच्चे शिष्य कहलाते हैं।

मान लीजिए कि एक गधा, जिसका न तो आकार गाय का-सा है न आवाज़, न जिसके गाय के समान सींग हैं, गायों के झुंड के पीछे चले और घोषणा करे, ''देखिए, मैं भी गाय हूँ।'' तो क्या उसका कोई विश्वास करेगा? यह भी वैसी ही मूर्खता होगी यदि मनुष्य शील, ध्यान और प्रज्ञा के मार्गों का अनुसरण न करें और बड़ाई करना फिरे कि में निर्वाण के मार्ग का साधक हूँ या बुद्ध का शिष्य हूँ।

शरद में फसल काटने के लिए किसान को पहले खेत जोतना पड़ता है, बीज बोने पड़ते है, पानी देना पड़ता है और वसंत ऋतु में जब घास-पतवार उगती है तब उसे नींदना पड़ता है। ठीक वैसे ही निर्वाण के साधक को आचरण के इन तीन मार्गों का अनुसरण करना चाहिए। किसान यह अपेक्षा नहीं रख सकता कि उसका बोया हुआ बीज आज

ही उगे, कल तक पौधा बन जाए और परसों फसल काटी जा सके। वैसे ही निर्वाण का साधक यह अपेक्षा नहीं कर सकता कि आज ही सब क्लेशों से मुक्त हो जाऊँ , कल तक सभी आसक्तियों से छुटकारा पा जाऊँ और परसों निर्वाण प्राप्त कर लूँ।

जैसे बीज बाने के बाद पौधा उगकर उसमें फल लगने तक, मौसमों के परिवर्तनों के साथ, किसान धीरज से निगरानी करता है, वैसे ही निर्वाण के साधक को आचरण के तीन मार्गों का अनुसरण करके धीरज और अध्यवसाय के साथ निर्वाण की भूमि को जोतना चाहिए।

2. सांसारिक भोगविलासों से मोहित होकर, वासनाओं के कारण चित्त का स्वास्थ्य खो बैठने वाले के लिए निर्वाण के पथ पर चलना कठिन है। सांसारिक आनन्द और सत्यपथ पर चलने का आनन्द दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है, चित्त की सभी वस्तुओं का मूल है। यदि चित्त सांसारिक बातों में आनन्द ले, तो उसमें से भ्रान्तियाँ और दु:ख ही पैदा हागें, किन्तु यदि चित्त सत्यपथ में आनन्द का अनुभव करे, तो नि:संशय उसमें से सुख, संतोष और निर्वाण की उत्पत्ति होगी।

अत: निर्वाण की कामना करनेवालों को अपने चित्त को शुद्ध रखना चाहिए और धीरज से तीन मार्गों का अंगीकार और आचरण करना चाहिए

शीलों का पालन करने से चित्त सहज में एकाग्र हो जाता है, चित्त की एकाग्रता साध्य होने से सहज ही प्रज्ञा का विकास होता है, और प्रजा की मनुष्य को निर्वाण की ओर ले जाती है।

सचमुच ये तीनों (शीलों का पालन, ध्यान की साधना और प्रज्ञा का विकास) निर्वाण के सही मार्ग है।

इनका अनुसरण न करने से, लोग दीर्घ काल तक मानसिक भ्रान्तियों का संचय करते आए हैं। उन्हें सांसारिक लोगों से विवाद नहीं करना चाहिए, अपितु निर्वाण-प्राप्ति के लिए अपने विशुद्ध चित्त की गहराई में उतरकर धीरज के साथ ध्यान करना चाहिए।

3. यदि आचरण के इन तीन मार्गों को विस्तार से कहें तो उन्हें आर्य अष्टांगिक मार्ग, चार स्मृत्युपस्थान, चार सम्यक्प्रहाण, पंच बल और छह पारमिताएँ कहा जा सकता है।

आर्यअष्टांगिक मार्ग है सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्वचन, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-जीविका, सम्यक्-उद्योग, सम्यक्-स्मृति और सम्यक् समाधि।

सम्यक्-दृष्टि का अर्थ है चार आर्यसत्यों का यथार्थ ज्ञान, कार्य कारण-संबंध के सिद्धान्त में विश्वास और मिथ्यादृष्टि का त्याग।

सम्यक्-संकल्प का अर्थ है वासनाओं में न फँसने, लोभ न करने

क्रोध न करने और कोई भी हानिकर कार्य न करने का संकल्प।

सम्यक्-वचन का अर्थ है झूठ न बोलना, वृथा बकवास न करना, गाली-गलौच न करना और दौमुँही बात न कहना।

सम्यक्-कर्म का अर्थ है किसी जीव की हिंसा न करना, और न चोरी और न व्यभिचार करना।

सम्यक्-जीविका का अर्थ है जीवनयापन के किसी भी लज्जास्पद ढंग से बचे रहना।

सम्यक्-उद्योग का अर्थ है सही दिशा की ओर आलस्य छोड़कर सतत बढ़ते रहने का प्रयत्न करना।

सम्यक्-स्मृति का अर्थ है पवित्र और विवेकपूर्ण चित्त की रक्षा करना।

सम्यक्-समाधि का अर्थ है गलत लक्ष्य की चित्त को हटाकर, प्रजा के विकास के लिए ठीक, शांत और एकाग्र करना।

4. चार स्मृत्युपस्थान ये हैं: पहला, अपने शरीर को अपवित्र मानकर उसके प्रति सब आसक्तियों का त्याग करने का प्रयत्न; दूसरा, सभी

इन्द्रियों को दु:ख का मूल समझना, चाहे उनकी अनुभूतियाँ कष्ट देने वाली हों या आनन्द, तीसरा, अपने मन को सतत परिवर्तनशील, अस्थिर मानना और चौथा, यह मानना कि इस संसार की सभी वस्तुएँ हेतु ओर प्रत्ययों के कारण उत्पन्न होती हैं और कोई भी वस्तु अनन्तकाल तक शाश्वत नहीं रहती।

5. चार सम्यक् प्रहाण ये हैं: पहला, किसी भी पाप को पैदा होने से पहले ही रोकना; दूसरा, उत्पन्न हुए पाप का तुरन्त निवारण करना; तीसरा, पवित्र कार्य करने के लिए अपने को प्रवृत्त करना; और चौथा, आरंभ किए गए पवित्र कार्यों को चालू रखने और उनको विकसित करने के लिए प्रयत्नशील रहना। इन चारों प्रहाणों का पालन करना चाहिए।

6. पंच बल ये हैं: पहला, श्रद्धा:, दूसरा, प्रयत्न करने का संकल्प; तीसरा, हृदय में गहरे विवेक का धारण; चौथा, मन को एकाग्र करने की शक्ति और पाँचवाँ, शुद्ध प्रजा को धारण करना। ये पाँच निर्वाण-प्राप्ति के लिए आवश्यक बल हैं।

7. छह पारमिताएँ हैं दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान, तथा प्रज्ञा। इनका आचरण करने से, इनके द्वारा मोह के इस तट को पार कर निर्वाण के उस तट तक पहुँच सकते हैं, अत: इन्हें षट्पारमिता कहते हैं।

दान के कारण स्वार्थ से मुक्ति मिलती है; शीलों के आचरण से दूसरों के अधिकारों और सुख-सुविधाओं के प्रति मनुष्य सोचने लगता है; क्षान्ति के पालन से भयभीत अथवा क्रुद्ध मन को नियंत्रित रखने में सहायता मिलती है; वीर्य की साधना मनुष्य को अध्यवसायी और प्रामाणिक बनने में सहायक होती है; ध्यान की साधना इधर-उधर व्यर्थ भटकने वाले चंचल मन को शांत करती है और प्रज्ञा की साधना अन्धकारपूर्ण सम्भ्रमित मन को स्पष्ट और तीक्ष्य अन्तर्दृष्टि से आलोकित करती है।

दान और शीलों का पालन, बड़े दुर्ग के निर्माण के लिए आवश्यक मजबूत बुनियाद के समान, साधना की बुनियाद है। क्षान्ति तथा वीर्य दुर्ग की दीवारों की तरह बाहर के संकटों से बचाते हैं। ध्यान और प्रज्ञा मनुष्य का अपना कवच है, जो जन्म और मृत्यु के आक्रमणों से उसकी रक्षा करता है।

यदि मनुष्य केवल अपनी सुविधा के अनुसार दान करे अथवा इसलिए दान करे कि न देने की अपेक्षा देना आसान है, तो वह दान है सही, किन्तु सच्चा दान नहीं है। सच्चा दान किसी के याचना करने से पहले ही सहानुभूति के कारण दिया जाता है और सच्चा दान वही है जो कभी-कभी नहीं, अपितु सतत दिया जाता है।

दान के बाद पछतावे या घमंड की भावना पैदा हो तो उसे भी सच्चा दान नहीं कहा जा सकता। सच्चा दान खुशी से दिया जाता है। जिसमें

दानी अपने-आपको, ग्रहणकर्ता को और दान को भी भूल जाता है।

सच्चा दान सहज रूप में शुद्ध करुणापूर्ण हृदय से दिया जाता है, जिसमें प्रत्युपकार की कोई कामना नहीं होती। कामना होती है केवल एक साथ निर्वाण में प्रवेश करने की।

पास में अधिक धन न होते हुए भी सात प्रकार के दान आसानी से किए जा सकते हैं। पहला है शरीर-दान। यह अपने शारीरिक परिश्रम द्वारा दिया जा सकता है। इसका सर्वश्रेष्ठ प्रकार अपने जीवन को समर्पित करना है, जैसा कि आगे की कथा में बताया गया है। दूसरा है हृदय-दान इसका मतलब करुणापूर्ण हृदय से दूसरों के साथ पेश आना है। तीसरा नत्र-दान है; प्रेमपूर्ण दृष्टि से सब की ओर देखना, जिससे उनका मन प्रसन्न हो उठे। चौथा मुखाकृति-दान है; यह है सौम्य मुखाकृति से सदा स्मित करते हुए सब के साथ व्यवहार करना। पाँचवाँ है वाणी-दान; दूसरों से सहृदय और प्यार-भरे शब्दों में बात करना। छठा है आसन दान; अपना आसन दूसरों को देना। सातवाँ है आश्रय-दान। दूसरों की एक रात अपने घर पर बिताने देना। इस प्रकार के दान कोई भी अपने दैनंदिन जीवन में कर सकता है।

8. पुराने समय में सत्त्व नाम का एक राजपुत्र था। एक दिन वह अपने दो बड़े भाइयों के साथ बन में क्रीड़ा करने गया। वहाँ उन्होंने भूख से व्याकुल एक शेरनी को देखा जो अपनी भूख मिटाने के लिए अपने सात बच्चों को खाने के लिए विवश हो गई थी।

सभी बड़े भाई भय के मारे वहाँ से भाग खड़े हुए किन्तु सत्त्व एक ऊँची चट्टान पर चढ़ गया और वहाँ से उसने अपन-आपको शेरनी के सामने झोंक दिया ताकि उसके बच्चों के प्राण बचें।

राजकुमार सत्त्व ने यह दानशीलता का कार्य स्वयंस्फूर्ति से किया किन्तु मन ही मन वह सोच रहा था: ''यह शरीर परिवर्तनशील और अनित्य है; अब तक उसका दान करने की बात सोचे बिना, मैं उससे प्यार ही करता आया हूँ किन्तु अब मैं इसे इस शेरनी को अर्पित कर दूँ, ताकि निर्वाण की प्राप्ति कर सकूँ।'' राजकुमार सत्त्व का यह विचार निर्वाण-प्राप्ति के उसके सच्चे संकल्प का दिग्दर्शक है।

9. फिर चित्त की चार अप्रामाण्य (जिनका कोई प्रमाण नहीं है) अवस्थाएँ है, जिनकी निर्वाण-प्राप्ति की इच्छा रखनेवालो को भावना करनी चाहिए। इनको 'ब्रह्म-विहार' कहते हैं। वे हैं मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा। मैत्री की भावना से लोभ को दूर किया जा सकता है, करुणा की भावना से क्रोध का उपशम होता है, मुदिता से दु:खों का अन्त किया जा सकता है तथा उपक्षा से शत्रु और मित्र के बीच भेदभाव करने की आदत छूट जाती है।

जो लोगों को सुखी और संतुष्ट करे वही महान मैत्री है, लोगों को सुखी और संतुष्ट न करनेवाली बातों को जो मिटाती है वही महाकरुणा

है; सभी लोगों का हर्षोत्फुल्ल हृदय से स्वागत करना महान मुदिता है। सभी लोगों के प्रति समानता से, भेदभाव किए बिना, व्यवहार करना महान उपेक्षा है।

बड़ी सावधानी से इन चार ब्रह्मविहारों की भावना करनी चाहिए और लोभ, क्रोध, दु:ख तथा राग-द्वेष-भरे चित्त से मुक्ति पानी चाहिए। किन्तु यह इतना आसान काम नहीं है। पापी मन को हटाना रखवाली के कुत्ते को हटाने के जितना मुश्किल है और पवित्र मन को खो बैठना वन में दौड़ते हुए हिरन को खोने जितना आसान है। अथवा पापी मन को मिटाना पत्थर पर खोदे हुए अक्षरों को मिटाने जितना कठिन है और पवित्र मन का नष्ट हो जाना पानी पर लिखे गए अक्षरों के नष्ट हो जाने जितना आसान है। निर्वाण की साधना करना बहुत कठिन तपस्या है।

10. श्रोण (सोण) नाम का एक युवक था, जिसका जन्म धनी परिवार में हुआ था, किन्तु जो शरीर से बहुत कोमल था। वह निर्वाण-प्राप्ति के लिए बहुत उत्सुक था, इसलिए भगवान बुद्ध का शिष्य बन गया। रात को पैरों के तलवों में खून निकलने तक चंक्रमण करके वह साधना करता था, किन्तु फिर भी उसे निर्वाण-प्राप्ति नहीं हुई।

भगवान को उस पर दया आई और उन्होंने कहा, "श्रोण, जब तुम गृहस्थ थे, तब तुमने वीणा तो बजाई ही होगी। तुम जानते ही हो कि वीणा के तार अधिक खींचे जाएँ या अधिक ढील छोड़े जाएँ तो उनसे मधुर संगीत नहीं निकलता। संगीत तभी निकलता है जब उसके तार ठीक अनुपात में खींचे गए हों।

''निर्वाण की साधना में भी शिथिल बनने से निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता और अति उत्साह से तनकर प्रयत्न करने पर भी निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए मनुष्य को प्रयत्न करते समय ठीक अनुपात का सतत ख्याल रखना चाहिए।''

इस प्रकार शिक्षा प्राप्तकर श्रोण ने वीर्यसमता संपादन की और इंद्रियसमत्व प्राप्त कर उसने शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त कर लिया।

11. पुराने काल में एक राजकुमार था, जो पाँच प्रकार के शस्त्रों के प्रयोग में प्रवीण था। एक दिन शस्त्राभ्यास से घर लौटते समय उसकी भेंट एक भीमकाय दैत्य से हुई, जिसकी त्वचा अभेद्य थी।

दैत्य ने राजकुमार पर धावा बोल दिया, किन्तु वह बिलकुल घबराया नहीं। उसने दैत्य पर बाण मारा किन्तु उससे उसका बाल भी बाँका न हुआ। फिर राजकुमार ने अपना भाला फेंका, किन्तु वह भी दैत्य की मोटी त्वचा को छेद नहीं पाया। फिर उसने डण्डा और नेजा फेंककर देखा, किन्तु वे दैत्य को चोट नहीं पहुँचा पाए। फिर उसने तलवार का प्रयोग किया, किन्तु वह टूट गई। फिर उसने मुष्टियों और लातों स दैत्य पर आक्रमण करने का प्रयास किया किन्तु व्यर्थ, क्योंकि दैत्य ने उसे अपने विशाल बाहुओं में जकड़ लिया। फिर राजकुमार ने मस्तक को शस्त्र के रूप में काम में लाने का प्रयास किया, किन्तु वह भी व्यर्थ गया।

दैत्य ने कहा, ''अब विरोध करने से कोई फायदा नहीं; मैं तुम्हें खाने ही वाला हूँ।'' राजकुमार ने उत्तर दिया, ''तुमने मान लिया होगा कि मेरे सब शस्त्र समाप्त हो चुके और मैं अब लाचार हूँ, किन्तु मेरे पास और एक शस्त्र बचा हुआ है। अगर मुझे खा लिया तो मैं तुम्हारे पेट के भीतर से तुम्हें नष्ट करूँगा।'

राजकुमार के सीस से दैत्य घबरा गया और उसने पूछा, 'वह केसे?'' रामकुमार ने उत्तर दिया, ''सत्य की सामर्थ्य से।

तब दैत्य ने उसे छोड़ दिया और सत्य का उपदेश करने की प्रार्थना की।

इस कथा की शिक्षा यह है कि शिष्य अपने प्रयत्नों में बराबर लगा रहे और कितने भी संकट क्यों न आएँ धीरज न खोए।

12. निन्दनीय स्वाग्रह और निर्लज्जता दोनों इस लोक में झगड़ा पैदा करते हैं, किन्तु लोकापवाद और लज्जा इस लोक की रक्षा करते हैं। लोग अपने माता-पिताओं, बुज़ुर्गों, भाई-बहनों का आदर इसलिए करते हैं कि वे लोकापवाद और लज्जा से चौकन्ने रहते हैं। आत्म-परीक्षण करने के बाद दूसरों का निरीक्षण करते हुए अपने घमंड को काबू में रखना और लज्जा का अनुभव करना लाभदायक है।

मनुष्य में यदि पश्चात्ताप की भावना है तो उसके पाप नष्ट हो जाएंगे; किन्तु वह पश्चात्ताप की भावना से रहित हो तो उसके पाप बढ़ते जाएँगे और उसका सत्यानाश कर देंगे।

जो सत्य धर्म का ठीक से श्रवण करता है और उसके अर्थ तथा उसके साथ अपने संबंध को जानता है वही उसको ग्रहण कर उससे लाभ उठा सकता है।

यदि मनुष्य केवल सत्य-धर्म का श्रवण-मात्र करे, किन्तु ग्रहण न करे तो वह निर्वाण-प्राप्ति की अपनी खोज में असफल होगा।

श्रद्धा, विनय, विनम्रता, प्रयत्न और प्रज्ञा निर्वाण की साधना करने वाले के लिए बल के बड़े स्रोत हैं। इनमें प्रज्ञा सब से श्रेष्ठ है और दूसरे प्रज्ञा के पहलू-मात्र हैं। साधनारत मनुष्य यदि सांसारिक मामलों में उलझ जाए, व्यर्थ बातों करना पसन्द करे या निदालु बन जाए तो वह निर्वाण के पथ से भ्रष्ट हो जाएगा।

13. निर्वाण की साधना में कुछ लोगों को शीघ्र सफलता मिलेगी तो कुछ लोगों को देर से। अतः दूसरों को पहले निर्वाण-प्राप्त करते हुए देखकर किसी को निरुत्साहित नहीं होना चाहिए।

जब मनुष्य धनुर्विद्या का अभ्यास करता है, तब वह शीघ्र सफलता की अपेक्षा नहीं करता, किन्तु वह जानता है कि यीद वह धीरज के साथ अभ्यास करता रहेगा तो अधिकाधिक अचूक लक्ष्यवेध कर सकेगा। नदी प्रारंभ में एक छोटा सा झरना होती है, किन्तु धीरे-धीरे वह बढ़ती चली जाती है और अन्त में सागर में जा मिलती है।

वैसे ही, यदि मनुष्य धीरज और अध्यवसाय से साधना करता रहे, तो उसे वश्य निर्वाण की प्राप्ति होगी।

जैसा कि पहले समझाया जा चुका है, यदि मनुष्य अपनो आँखें खुली रखे, तो उसे हर जगह उपदेश दिखाई देगा, इस तरह निर्वाण-प्राप्ति के उसके अवसर भी अनन्त हैं।

एक बार एक मनुष्य अगरु जला रहा था। उसके ध्यान में आया कि सुंगध न तो आ रही है, न जा रही है; वह न तो प्रकट हुई, न उसका लोप हुआ। यह साधारण सी घटना उसकी निर्वाण प्राप्ति का कारण बन गई।

एक बार किसी आदमी के पाँव में काँटा चुभ गया। उसने तीव्र वेदना का अनुभव किया और उसके मन में विचार उठा कि वेदना चित्त की प्रतिक्रिया-मात्र है। इस घटना से उसके मन में और गहरे विचार उठते चले गए कि मन को यदि नियंत्रित न किया गया तो वह हाथ से बाहर निकल जाता है और अगर संयत रखा गया तो पवित्र बन जाता है। इन विचारों से, कुछ समय बाद, उसे निर्वाण-प्राप्ति हुई।

और एक आदमी था जो बहुत लोभी था। एक दिन जब वह अपने लोभी मन पर सोच रहा था तो उसे साक्षात्कार हुआ कि ये लोभी विचार तो चैले और चिप्पियाँ-मात्र हैं, जो ज्ञान द्वारा जलाए और भस्म किए जा सकते हैं। यह उसके निर्वाण का आरंभ था।

एक पुरानी कहावत है: ''अपने चित्त को सन्तुलित रखो। यदि चित्त सन्तुलित हो तो सारी दुनिया सन्तुलित होगी।'' इन शब्दों पर सोचिए। ध्यान में रखिए कि संसार के सारे भेदभाव चित्त के भेदभावपूर्ण विचारों के कारण पैदा होते हैं। इन्हीं शब्दों में निर्वाण का पथ है। सचमुच निर्वाण की ओर ले चलने वाले मार्ग अनंत हैं।

3
श्रद्धा का मार्ग

1. जो बुद्ध, धर्म और संघ के त्रिरत्न की शरण लेते हैं वे बौद्ध धर्म के

उपासक कहलाते हैं। बौद्ध धर्म के उपासक चार साधनामार्गों को अपनाते हैं –शील, श्रद्धा, दान तथा प्रजा।

प्राणातिपात-विरति (किसी भी जीवन की हत्या न करना) अदत्तादान-विरति (चोरी न करना), काम-मिथ्याचार-विरति (व्यभिचार न करना), मृषावाद-विरति (झूठ न बोलना) और सुरा-मैरेय-प्रमाद स्थान-विरति (शराब न पीना) इन पाँच शीलों का पालन उपासकों को करना चाहिए।

बुद्ध की प्रज्ञा में विश्वास करना उपासकों की श्रद्धा है; लोभ और आसक्ति का त्याग कर सदा दूसरों को दान करने में आनन्द अनुभव करना उपासकों का दान है। और फिर हेतु और प्रत्यय के सिद्धान्त को जानकर इस सिद्धान्त का ज्ञान होना कि सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं, उपासकों की प्रज्ञा है।

पूर्व की ओर झुका हुआ पेड़ गिरते समय निश्चित रूप से पूर्व की ओर ही गिरेगा, वैस ही जो लोग जीवन-भर बुद्ध के उपदेश का श्रवण कमरते हैं और उसमें श्रद्धा रखते हैं, उनक जीवन का अन्त कहीं भी, कैसे भी हो, वे निश्चित ही बुद्ध की पवित्र भूमि सुखवती में जन्म लेंगे।

2. ठीक ही कहा गया है कि बुद्ध, धर्म और संघ में श्रद्धा रखनेवाले बुद्ध के उपासक कहलाते हैं।

बुद्ध वही हैं जिन्होंने सम्यक्सबोधि को प्राप्त किया और उसके द्वारा सारी मानव-जाति का उद्धार और कल्याण किया। ऐसे बुद्ध द्वारा किए गए उपदेशों को धर्म कहते हैं। संघ उन उपदेशों के अनुसार सची साधना करनेवालों का समन्वित समुदाय है।

बुद्ध, धर्म और संघ ये तीनों तीन होते हुए भी एक दूसरे से अलग तीन वस्तुएँ नहीं हैं। बुद्ध धर्म में प्रकट होते हैं और उस धर्म का आचरण संघ द्वारा होता है। इसलिए धर्म में विश्वास करना और संघ की उपासना करना बुद्ध में श्रद्धा रखना है और बुद्ध में श्रद्धा रखने का मतलब है धर्म में विश्वास करना और संघ की उपासना करना।

इसलिए लोग केवल बुद्ध पर श्रद्धा रखकर अपना उद्धार और साक्षात्कार कर सकते हैं। बुद्ध सम्यक्संबुद्ध हैं और वे हर एक से अपने पुत्र के समान प्यार करते हैं। इसलिए यदि कोई बुद्ध को अपना पिता मानता है तो वह बुद्ध के साथ एकरूप हो जाता है और निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

जो इस प्रकार भगवान बुद्ध का ध्यान करते हैं उन्हें उनकी प्रज्ञा का आधार मिलेगा और उनकी कृपा की सुगंध से उनका जीवन महक उठेगा।

3. भगवान बुद्ध पर श्रद्धा रखने से अधिक लाभदायक इस संसार में और कुछ नहीं हैं। केवल एक बार बुद्ध के नाम का श्रवणकर श्रद्धा और हर्ष करना भी महान फलदायी है।

इसलिए इस संसार में व्याप्त ज्वालाओं में प्रवेश करके भी, बुद्ध के उपदेश का श्रवणकर श्रद्धा और हर्ष का अनुभव करना चाहिए।

धर्म का उपदेश करनेवाले गुरु से भेंट होना कठिन है, बुद्ध से भेंट होना और भी कठिन है, और उनके उपदेश में श्रद्धा करना तो सब से कठिन है।

किन्तु जिनसे भेंट होना कठिन है उन बुद्ध से भेंट हुई है, और जो कठिनाई से ही सुना जा सकता है वह सुनने का अवसर मिला है, तो आपको हर्ष करना चाहिए, विश्वास करना चाहिए और बुद्ध में श्रद्धा रखनी चाहिए।

4. जीवन की दीर्घ यात्रा में श्रद्धा सब से अच्छा साथी है; यात्रा का सब से अच्छा पाथये है और सर्वोत्तम संपत्ति है।

श्रद्धा बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण करके सभी पुण्यों को प्राप्त करने वाला पवित्र हाथ है। श्रद्धा सांसारिक वासनाओं की अशुद्धियों का जलाकर खाक करनेवाली आग है, वह बोझ को हटाकर मनुष्य के पथ का मार्गदर्शक बनती है।

श्रद्धा लोभ, भय और अभिमान को दूर करती है; वह विनय और दूसरां का आदर करना सिखाती है; वह परिस्थितियों के बंधन से मनुष्य को मुक्त करती है; संकटों का सामना करने का साहस देती है; प्रलोभनों पर विजय पाने की सामर्थ्य देती है; अपने आचरण को तेजस्वी और शुद्ध रखने में सहायक होती है और ज्ञान से हृदय को समृद्ध कर देती है।

पथ जब लम्बा और उकतानेवाला होता है तब श्रद्धा प्रेरक शक्ति बनती है और निर्वाण की ओर ले जाती है।

श्रद्धा हमें ऐसा अनुभव कराती है क मानो हम सदा भगवान बुद्ध के सामने हैं, बुद्ध ने अपनी बाँहों में हमें समेट लिया है।

श्रद्धा हमारे कठोर और स्वार्थी मन को कोमल बनाती है और दूसरों के साथ आत्मीयता से घुलमिल जाने की वृत्ति और सहानुभूतिपूर्ण हृदय का निर्माण करती है।

5. जो श्रद्धावान हैं उन्हें, वे कुछ भी सुनाते हैं उसमें, भगवान बुद्ध का उपदेश श्रवण करने की प्रज्ञा प्राप्त होती है। श्रद्धावान लोगों को यह देखने की प्रज्ञा भी प्राप्त होती है कि सभी घटनाएँ हेतु और प्रत्यय के कारण घटती रहती है; और फिर श्रद्धा उन्हें अपनी परिस्थितियों को धीरज के साथ स्वीकार करने और उनके साथ मेल बिठाने की सामर्थ्य प्रदान करती है।

यह जानते हुए कि परिस्थितियाँ और घटनाएँ चाहे जितनी बदलें जीवन का सत्य सदा अपरिवर्तित रहता है, श्रद्धा उन्हें जीवन की अनित्यता को पहचानने की प्रज्ञा देती है; और उनपर केसी भी विपत्ति क्यों न पड़े, या खुद जीवन का अन्त ही क्यों न हो जाए, अचंभित न होने और शोक न करने का बल प्रदान करती है।

श्रद्धा के तीन महत्त्वपूर्ण पहलू हैं: पश्चात्ताप, दूसरों के गुणों के प्रति प्रशंसा की भावना तथा बुद्धमय जीवन की कामना करते रहना।

लोगों को श्रद्धा के इन पहलूओं का विकास करना चाहिए; उन्हें अपने पापों और अशुद्धियों के प्रति सचेत रहना, उनके प्रति लज्जित होना ओर उनपर पछताना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे दूसरों के सत्कर्मों और सत्प्रवृत्तियों को मुक्त मन से स्वीकार करें, उनकी प्रशंसा करें और सदा बुद्ध के साथ कर्म करने और बुद्ध के साथ जीवनयापन करने की कामना करें।

श्रद्धावान मन निष्ठावान होता है; उसमें गहराई होती है, वह इस बात में सच्चा आनन्द अनुभव करता है कि बुद्ध उसे अपनी शक्ति से बुद्धक्षेत्र की ओर ले जाएँगे।

अत:, बुद्ध लोगों को बुद्धक्षेत्र की ओर ले जाने वाली उनकी श्रद्धा को दृढ़ करते हैं। वह सामर्थ्य उन्हें पावन करती और आत्मा-भ्रान्ति से उनकी रक्षा करती है। सारे संसार में जिसका गुणगान हो रहा है उस बुद्ध के नाम को सुनकर यदि वे एक क्षण भी श्रद्धा करें तो वे बद्ध के सुखावती बुद्धक्षेत्र की ओर ले जाए जाएँगे।

6. श्रद्धा सांसारिक मन में बाहर से नहीं डाली जाती-वह तो मन की तह में पड़े हुए बुद्धत्व का आविर्भाव है। क्योंकि बुद्ध को जाननेवाला स्वयं बुद्ध होता है; बुद्ध में श्रद्धा रखने वाला भी स्वयं बुद्ध होता है।

मन में बुद्धत्व होते हुए भी वह क्लेशों के कीचड़ में इतना गहरा डूबा होता है कि उसमें से सम्यक्संबोधि का अंकुर फूटकर फूल खिलना संभव नहीं होता। लोभ और क्रोध जैसे क्लेशों के आक्रमणों के बीच बुद्ध की ओर अभिमुख होकर बढ़ने वाला पवित्र हृदय क्योंकर विकसित होगा?

विषैले एरंड वृक्षों के वन में केवल एरंड के पेड़ ही उगते हैं सुगन्धित चन्दन के वृक्ष नहीं उगते। एरंडवन में यदि चन्दन का वृक्ष पैदा हो जाए तो उसे एक चमत्कार ही कहना चाहिए। उसी प्रकार लोगों के हृदय में बुद्ध के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो तो वह भी एक चमत्कार ही मानना चाहिए।

इसलिए बुद्ध में विश्वास करनेवाली श्रद्धा को 'मूलहीन' कहा गया है। उसके पैदा होने के लिए मनुष्य-हृदय में उसका कोई मूल नहीं होता, बुद्ध करुणामय हृदय में ही उसका मूल होता है।

7. श्रद्धा बड़ी फलदायिनी और पावन है। किन्तु निष्क्रिय मन में उसका पैदा होना कठिन है। विशेषरूप से आगे बताये गए पाँच संदेह मनुष्य के मन में उठते रहते हैं और श्रद्धा में बाधा पैदा करते हैं।

पहला है, बुद्ध की प्रज्ञा पर संदेह करना; दूसरा है, बुद्ध के उपदेश पर संदेह करना; तीसरा है, बुद्ध के उपदेशों की व्याख्या करनेवाले पर संदेह करना; चौथा है, इस बात पर संदेह करना कि निर्वाण-पथ पर चलने के लिए जो साधन और मार्ग बताए गए हैं, वे ठीक हैं या नहीं; पाँचवाँ है, अपने उद्धत और असहिष्णु मन के कारण, बुद्ध के उपदेशों को समझने और उनका अनुसरण करने वाले लोगों की प्रामाणिकता पर संदेह करना।

सचमुच, संदेह से भयानक और कोई वस्तु इस संसार में नहीं है। संदेह लोगों को अलग करता है, तोडता है यह एक ऐसा विष है जो मित्रता को खण्डित करता और अच्छे संबंधों में विच्छेद पैदा करता है। यह हृदय में चुभने और पीड़ा पहुँचानेवाला काँटा है; जान लेनेवाला खड्ग है।

श्रद्ध के बीज बहुत पुराने काल में करुणामूर्ति बुद्ध द्वारा हमारे हृदय में बोये गए हैं। जब हमारे हृदय में श्रद्धा के अंकुर फूट निकलें, तब हमें इस बात को समझने और बुद्ध के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए।

हमें यह कभी भूलाना नहीं चाहिए कि हृदय में जागी हुई श्रद्धा हमारी अपनी करुणा के कारण नहीं, बुद्ध की, जिसने मानव हृदय में बहुत पहले श्रद्धा का पावन प्रकाश फैलाया और उनके अज्ञानांधकार को हटाया, करुणा के कारण जागी है। आज वही श्रद्धा हमें विरासत में मिली है।

सामान्य जीवन जीते हुए भी, हम सुखावती बुद्धक्षेत्र में जन्म ले सकते हैं, क्योंकि बुद्ध की अविरत करुणा के कारण ही हमारे हृदय में श्रद्धा पैदा होती है।

सचमुच, मनुष्य-जन्म की प्राप्ति दुष्कर है, धर्म का श्रवण करना दुष्कर है, श्रद्धा का होना तो और भी दुष्कर है। अतः बुद्ध के उपदेशों का श्रवण करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहना चाहिए।

4
बुद्ध के सुवचन

1. जो यही सोचता रहता है कि ''उसने मुझे गाली दी, वह मुझपर हँसा, उसने मुझे मारा।'' उसका वैर कभी शान्त नहीं होता।

वैर कभी वैर से नहीं मिटता। वैर को भूल जाने से ही वैर शान्त होता है।

यदि छत ठीक से न बनाई गई, या दुरुस्त न की गई, तो वह बरसात में चूने लगेगी; ठीक उसी तरह अनियंत्रित या बिना साधे हुए मन में लोभ घुस जाता है।

आलस्य मृत्यु की ओर ले जानेवाला और परिश्रम जीवन का मार्ग है; मूर्ख लोग आलसी होते हैं, प्रज्ञावान लोग परिश्रमी होती हैं।

बाण बनानेवाला अपने बाणों को सीधा बनाने का यत्न करता है; वैसे ही ज्ञानी मनुष्य अपने चित्त को सीधा रखने का प्रयत्न करता है।

विक्षिप्त मन इधर-उधर भटकता हुआ सदा अस्थिर और दुर्दमनीय होता है; किन्तु अक्षुब्ध मन शांत होता है; इसलिए सयाने लोग मन को नियंत्रित रखते हैं।

आदमी का मन ही उसे पाप की ओर ललचाता है, उसका शत्रु या द्वेष्टा नहीं।

जो लोभ, क्रोध और मूढ़ता से अपने मन की रक्षा करता है, वही सच्ची और शाश्वत शांति का स्वाद लेता है।

2. अच्छे वचन मुँह से निकालकर उनके अनुसार आचरण न करना सुगन्धहीन पुष्प के समान है।

फूल की सुगन्ध पवन के विरुद्ध फैल नहीं सकती, किन्तु सत्पुरुष का यश पवन के विरुद्ध भी संसार में फैल जाता है

निद्राहीन मनुष्य की रात लम्बी होती है और थके हुए मनुष्य को यात्रा दीर्घ लगती है; वैसे ही सद्धर्म को न जाननेवाले मनुष्य को भ्रान्ति और दु:ख का समय दीर्घ लगता है।

मनुष्य को अपने समकक्ष अथवा श्रेष्ठ के साथ ही यात्रा करनी चाहिए; मूर्ख के साथ यात्रा करने की अपेक्षा अकेले यात्रा करना अच्छा।

हिंस्र पशु से भी अधिक अप्रामाणिक और बुरे मित्र से डरना चाहिए;हिंस्र पशु शरीर को चोट पहुँचा सकता है, किन्तु बुरा मित्र मन को चोट पहुँचाएगा।

'ये मेरे पुत्र है, यह मेरा धन है,' यही सोच-सोचकर मूर्ख मनुष्य दु:खी होता रहता है। जब अपना-आप ही अपना नहीं, तो पुत्र और धन अपने कैसे हो सकते हैं!

मूर्ख होकर अपनी मूर्खता को जानना, मूर्ख होते हुए भी अपने को पण्डित समझने से कही अच्छा है।

मुर्ख मनुष्य किसी पण्डित की संगति करे तो भी वह उसके द्वारा उपदेशित सद्धर्म को जान नहीं सकता, जैसे कड़छी दाल के स्वाद को।

ताज़ा दूध अक्सर जल्दी नहीं जमता; वैसे ही पापकर्म का तुरन्त फल नहीं होता। पापकर्म राख के नीचे दबे हुए अंगारों के समान होते हैं, जो सुलगते रहते हैं और अन्त में बड़े अग्निकांड का कारण बन जाते हैं।

विशेषाधिकार, तरक्की, लाभ अथवा सम्मान की कामना करते रहना मूर्खता है, क्योंकि ऐसी कामनाएँ कभी सुखी नहीं करती, उल्टे दु:ख का कारण बनती हैं।

गलतियों और कमियों की ओर ध्यान खींचने तथा बुराई की निन्दा करनेवाले कल्याण-मित्र का इस तरह आदर करना चाहिए, मानो उसने कोई छिपा खजाना दिखा दिया हो।

3. अच्छा उपदेश पाकर जो आदमी प्रसन्न होता है वह चैन की नींद सोएगा, क्योंकि उसका हृदय शुद्ध हो जाता है।

जिस तरह बढ़ई शहतीर को सीधा बनाता है, बाण बनानेवाला बाणों को सीधा बनाता है, पानी की नाली बनानेवाला इस तरह बनाता है कि उसमें पानी बिना रुकावट के बहता रह सके, उसी तरह पंडित अपने मन

को नियंत्रित करता और ऋजु बनाता है कि वह सीधे-सीधे ढंग से काम करता रहे।

जिस तरह बड़ी शिला वायु के झोंके से हिलती-डुलती नहीं, वैस ही पण्डित निन्दा-प्रशंसा से विचलित नहीं होता।

युद्ध में हज़ारों-लाखों को जीतने की अपेक्षा अपने-आपको जीतना ही सच्ची विजय है।

सच्चे उपदेश को न जानते हुए सौ वर्ष जीवित रहने की अपेक्षा सद्धर्म को सुनकर एक ही दिन जीना कहीं अच्छा।

जो भी अपने-आपको सचमुच प्यार करता है, उसे स्वयं को पाप से बचाते रहना चाहिए। जवानी, अधेड़ उम्र अथवा बुढ़ापा भी क्यों न हो, जीवन में एक बार तो आत्म-जागृति कर ही लेनी चाहिए।

यह संसार सतत जल रहा है, लोभ, क्रोध और मूढ़ता की आग में जल रहा है; इस जलते हुए घर से जल्दी से जल्दी भाग निकलना चाहिए।

यह संसार एक बुलबुले के समान है, मकड़ी के महीन जाले के समान है, गंदगी से भरे घट के समान है। इसलिए हरएक को सतत अपने मन की पवित्रता की रक्षा करनी चाहिए।

4. किसी भी पाप-कर्म को न करना, हमेशा अच्छे कर्म करते रहना और अपने मन को शुद्ध पवित्र रखना-यही बुद्ध का उपदेश है।

तितिक्षा की साधना सब से कठिन है, किन्तु जो सहनशील होता है, अंतिम विजय उसकी होती है।

द्वेष-भावना को मन में आते ही तत्काल निकाल बाहर करना चाहिए; हृदय दु:ख से भरा हो उसी समय दु:ख से मुक्ति पानी चाहिए, लोभाविष्ट स्थिति में ही लोभ को हटा देना चाहिए। समृद्धि में भी, किसी भी वस्तु को अपना समझकर पवित्र नि:स्वार्थ जीवन जीना चाहिए।

स्वस्थ और निरोग रहना सब से लाभदायक है; संतोष सब से बड़ा धन है; विश्वासपात्रता मित्रता का सच्चा लक्षण है; निर्वाण प्राप्त करना सर्वश्रेष्ठ सुख है।

जब पाप के प्रति अरुचि पैदा होती है, जब शांति का अनुभव होने लगता है, जब अच्छे उपदेशों के श्रवण में आनन्द आने लगता है जब मनुष्य को ऐसी अनुभूतियाँ होने लगती हैं और वह उनका स्वाद लेने लगता है, तब भयमुक्त हो जाता है।

अपनी प्रिय वस्तुओं के प्रति आसक्त न बनो, अप्रिय वस्तुओं से घृणा न करो; दु:ख, भय और बन्धन अपनी रुचि-अरुचि के कारण पैदा होते हैं।

5. लोहे से उत्पन्न मोरचा (जंग) लोहे को खा जाता है, उसी तरह पाप मनुष्य के मन में पैदा होकर मनुष्य का सत्यानाश कर देता है।

घर में धर्मग्रंथ हो पर उसे पढ़ा न जाए तो उसपर धूल चढ़ जाती है;घर की समय पर मरम्मत न की जाए तो वह जर्जर हो जाता है; उसी तरह आलसी का शरीर गन्दा और बेकार हो जाता है।

अपवित्र आचरण मनुष्य को कलुषित करते हैं; कृपणता से दान कलुषित होता है; उसी तरह पापकर्म न केवल इस जन्म को, अपितु आने वाले कई जन्मों के कलुषित कर देते हैं।

किन्तु मलों में सब से भयानक है अविद्या का मल। बिना अविद्या से मुक्ति पाए मनुष्य न तो अपने शरीर को, न मन को निर्मल बना सकता है।

कौए की तरह निर्लज्ज, दुस्साहसी, ढीठ होना, दूसरों को चोट पहुँचाकर भी खेद न करना सुकर है।

विनम्र होना दूसरों का आदर करना, अनासक्त होना, अपना आचरण पवित्र रखना तथा निर्मल प्रज्ञायुक्त होना दुष्कर है।

दूसरों की भूलें निकालना आसान है, किन्तु अपनी भूलें मान लेना बहुत कठिन है। मनुष्य बिना सोचे-विचारे दूसरों की भूलों को इधर-उधर

कहता फिरता है, किन्तु अपनी भूलों को इस प्रकार छुपाता है जैसे कोई जुआरी अतिरिक्त पासे को।

आकाश में पक्षी, धुएँ या आँधी का कोई निशान नहीं बनता; गलत उपदेश निर्वाण की ओर नहीं ले जाता; इस संसार में कुछ भी नित्य और स्थिर नहीं। लेकिन निर्वाण-प्राप्त मनुष्य का मन कभी अस्थिर और विक्षुब्ध नहीं होता।

6. जैसे गढ़पति अपने दुर्ग-द्वार की रक्षा करता है, उसी तरह बाहरी और अन्दरूनी संकटों से मन की रक्षा करनी चाहिए; एक क्षण भी मन को असुरक्षित नहीं छोड़ना चाहिए।

मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी, स्वयं ही अपना आधार है, इसलिए, सब से अधिक स्वयं को नियंत्रण में रखना चाहिए।

अपने मन को संयत रखना, व्यर्थ बकवास न करना और चिंतनशील बनना सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने की दिशा में पहला कदम हैं।

सूर्य दिन में चमकता है, चंद्रमा रात को उजाला करता है, योद्धा शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर शोभा पाता है, शान्ति से ध्यान करनेवाला निर्वाण का अधिकारी होता है।

जो अपने पाँच इन्द्रिय-द्वारों—आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा की रखवाली नहीं कर पाता और बाह्य जगत् से आकर्षित होता रहता है, वह निर्वाण का साधक नहीं है। पाँच इन्द्रिय-द्वारों की जो कड़ी रखवाली करता

हो और अपने चित्त को संयत रखता है वही निर्वाण का सफल साधक है।

7. मन में आसक्ति हो, तो उससे मोहित होकर वस्तुओं का सही रूप दिखाई नहीं देता। आसक्ति से मुक्त होने पर ही वस्तुओं का शुद्ध स्वरूप ठीक-ठीक दिखाई देता है। आसक्तिहीन मन को सभी वस्तुएँ नई ओर अर्थपूर्ण प्रतीत होती हैं।

दु:ख के पीछे सुख आता है, सुख के पीछे दु:ख। सुख और दु:ख, पाप और पुण्य के द्वन्द्व से परे होकर ही मुक्ति का लाभ हो सकता है।

अनागत भविष्य के प्रति उत्कंठित होकर चिंतित होनेवाला, अथवा बीते दिनों की छाया का पीछा करके पछतानेवाला कटे हुए सरकण्डे के समान सूखकर काँटा हो जाता है।

अतीत के बारे में शोक न करके अथवा अनागत भविष्य के प्रति उत्कंठित होकर चिन्ता न करते हुए वर्तमान को बुद्धिमानी और लगन से जीने से ही शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहते है।

अतीत का पीछा नहीं करना चाहिए, भविष्य की प्रतीक्षा करते हुए बैठ नहीं रहना चाहिए, वर्तमान के एक-एक क्षण को सारी शक्ति जुटाकर जीना चाहिए।

अपने वर्तमान कर्त्तव्य को बिना प्रमाद के अच्छी तरह पूरा करना चाहिए; उसे कल के लिए स्थगित करना या टालना नहीं चाहिए। आज का काम आज करके ही दिन को अच्छी तरह बिताया जा सकता है।

विश्वास मनुष्य का अच्छा मित्र और प्रज्ञा मनुष्य के लिए श्रेष्ठ मार्गदर्शक है। मनुष्य को चाहिए कि वह निर्वाण के प्रकाश की कामना करता हुआ अज्ञान और दु:ख के तिमिर से मुक्ति पाने का प्रयास करे।

श्रद्धा मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ धन है, सत्य के प्रति निष्ठा जीवन का सर्वश्रेष्ठ स्वाद है, पुण्य का संचय करना सर्वश्रेष्ठ कार्य है अच्छे काम करते रहना ही तन और मन के संयमित होने का प्रमाण है। यही पुण्य कर्म है।

श्रद्धा इस जीवन-यात्रा का पाथेय है, पुण्य मूल्यवान आश्रयस्थान है, प्रज्ञा दिन का प्रकाश और सम्यक्-विचार रात्रि का संरक्षण है। पवित्र जीवन जीनेवाले मनुष्य का कोई नाश नहीं कर सकता। जिसने लोभ पर विजय पा ली, वही निर्बाध मुक्त है।

कुल के भले के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करना चाहिए, गाँव के भले के लिए कुल का स्वार्थ भूल जाना चाहिए, राष्ट्र के हित के लिए गाँव को भी भूल जाना चाहिए, और निर्वाण के लिए तो सब कुछ भूल जाना चाहिए।

सभी वस्तुएँ अनित्य, परिवर्तनशील हैं, जैसे वे उत्पन्न होती हैं वैसे ही उनका क्षय हो जाता है; जीवन-मरण के दु:ख को पार करके ही चिर शांति प्राप्त होती है।